मूल्य—दो रुपया आठ आना

१

प्रभंजन अट्टहास करता हुआ एकाएक थिरक उठा—उसके कर्कश निनाद से आकाश रुद्ध हो गया और दिशायें गूँज उठीं—किसी को यह स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि आगे उसे किसी भयानक विपत्ति का सामना करना है।

सुखदायी मधुमास दुःखदायी हो गया, दो ही चार दिन में सर्वत्र अशान्ति उत्पन्न हो गई, सुख की नींद में सोई हुई प्रजा दुःख से व्यग्र होती हुई चौंक पड़ी, पशु-पत्ती सभी घबड़ा उठे, मंगल-धाम त्राहि-त्राहि तथा क्रन्दन के करुण नाद से पूर्ण हो गया, महामारी अट्टहास करती हुई थिरकने लगी।

प्लेग ने पूरा जोर लगाया। लोग किसी प्रकार भी इसका प्रतिकार नहीं कर सके। सहस्रों निरपराध नित्य इसके गाल में प्रविष्ट होने लगे। प्रकृति के सुन्दर उद्यान में—उस रमणीक खण्ड में जहाँ सर्वत्र शान्ति का अटल साम्राज्य रहा करता था, महामारी ने अपना पूरा बल दिखलाया।

बात-की-बात में सैकड़ों गाँव जनशून्य हो गये, मृत्यु पर मृत्यु

होने लगी, घरों में शवों के अन्तिम संस्कार करने वाले नहीं रह गये, सहस्रों स्त्रियाँ विधवा हो गईं और सैकड़ों युवक विधुर हो आँसू बहाने लगे—लाखों बच्चे मातृ-पितृहीन हो—बिलख-बिलख कर रोने लगे—अनेकों माता-पिता अपने एकमात्र आत्मा को गँवा-गँवा कर छाती पीटने लगे तथा अनेकों गर्भिणी स्त्रियाँ उदर में सन्तानों को लिये ही चल बसीं। लाखों पशु खूँटे पर बँधे ही मर गये। कोई उन्हें छोड़नेवाला नहीं रह गया। महामारी ने भयंकर नाश किया। मृत्यु संख्या दिन दिन बढ़ती ही गई, घरों में मुर्दे सड़ने लगे—कोई पानी तक देनेवाला नहीं रहा। असहाय दीन प्रजा तड़प-तड़प कर बेमौत मरने लगी, अनाथ बच्चे भूख से छटपटा कर मरने लगे, युवक वेदना से चिल्ला-चिल्ला कर महामारी की प्रज्ज्वलित ज्वाला में भस्मीभूत होने लगे।

संकटमय स्थिति आ उपस्थित हुई। लोग गाँव छोड़-छोड़कर भागने लगे—कुछ तो सुदूर देशों में निकल गये—और कुछ गाँव के बाहर ही कुटिया बनाकर रहने लगे—परन्तु वहाँ भी इस रोग से अछूते नहीं रह सके।

महामारी का सर्वत्र नग्न ताण्डव हो रहा था, लोग अपने अपने में पड़े थे। कोई किसी को पूछनेवाला न था। वैद्य और डाक्टरों ने भी मुँह फेर लिया। कौन इस दुर्द्धर्ष काल का सामना करने का साहस करता? कौन अपना प्राण विपत्ति में डालता? किसमें इतना साहस था कि प्लेग के रोगी की सेवा-सुश्रूषा करे। वहाँ तो अपना ही प्राण बचाना कठिन था।

प्लेग बढ़ता-बढ़ता डुमरी में जा पहुँचा। पहले दो-एक रोज तक तो चूहे ही मरते रहे परन्तु तीसरे दिन से नर बलि भी आरम्भ हो गई। चारों ओर पटापट लोग मरने लगे। एक ही सप्ताह के अन्दर घर घर में खलबली मच गई। लोग इधर-उधर भागने

लगे। दत्तराज ने प्लेग को भीषण रूप धारण करते देख गाँववालों से कहा—"भाइयो! जितना शीघ्र हो सके गाँव छोड़ दो—मेरे बगीचों में झोंपड़ी बना-बनाकर कुछ दिन वास करो। वहाँ तक चूहों की पहुँच न हो सकेगी। मुझे मालूम है, चूहों के द्वारा ही यह रोग फैलता है।"

सबों ने दत्तराज के कहने के अनुसार काम किया। दूसरे ही दिन से झोपड़ी बना-बनाकर लोग रहने लगे। परन्तु वहाँ भी सुख की नींद नहीं सो सके। मृत्यु संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। महामारी और भी उग्र रूप धारण कर जन-संहार करने लगी।

दत्तराज ने पीड़ितों की पूरी सहायता की। जिसे जिस बात की आवश्यकता हुई, तत्काल उसकी पूर्ति की। किसी का करुण-क्रन्दन सुनते ही वे तत्काल दौड़ जाते और यथाशक्ति उसकी सेवा-सुश्रूषा करते थे। अनाथों के यही सहायक और रक्षक थे। असहायों के यही अवलम्ब और दीनों के यही आधार थे।

परन्तु दत्तराज भी सुरक्षित नहीं रह सके। दो ही चार दिन के बाद प्लेग ने इन्हें भी उठा पटका। दत्तराज के गिरते ही समूचे बाग में हाहाकार मच गया और लोग झोपड़ियों से भी भागने लगे।

पति को मृत्यु-शैय्या पर देख मायादेवी अत्यन्त चिन्तित हुई। ऐसी विपत्ति में वह अपने पुत्र को भी नहीं बुला सकती थी, क्योंकि उसे भय था कि कहीं यहाँ आने पर उसका तीर्थराज भी इस कुचक्र में न फँस जाय। अतः वह स्वयं ही पति की सेवा-सुश्रूषा में लग गई। पुत्र को केवल प्लेग का समाचार भेजकर आने के लिये रोक दिया।

दत्तराज को पीड़ित देख नौकर-चाकर मारे डर के भाग खड़े हुए। सगे-सम्बन्धियों तथा आत्मीयजनों ने भी इस संकटकाल में मुँह मोड़ लिया। इससे मायादेवी हताश नहीं हुई, बल्कि और भी अधिक प्रेम से पति की सेवा में लग गई।

इस भाँति उचित उपचार होते रहने पर भी दत्तराज की अवस्था दिन-दिन गिरती ही गई। पति-सेवा में लगे रहने के कारण प्लेग ने मायादेवी को भी नहीं छोड़ा। परन्तु वह निर्बल हृदया नहीं थी। रोग का आक्रमण होने पर भी प्रसन्नतापूर्वक पति-सेवा में डटी रही। परन्तु महामारी का कबतक सामना कर सकती थी? पतिदेव के सामने ही 'हा! तीर्थ!' कहकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और जीवन की शेष घड़ियाँ गिनने लगी।

आज परीक्षा का अन्तिम दिन है। सभी छात्र परीक्षा-भवन में बैठे हुए अपनी भाग्य-परीक्षा में लीन थे। तीर्थराज भी अपनी सीट पर बैठा हुआ प्रश्नपत्र के उत्तरों को दोहरा रहा था। प्रश्नपत्र समाप्त कर वह उठना ही चाहता था कि एक गार्ड ने पूछा—"डुमरी का तीर्थराज कौन है?"

तीर्थराज ने नम्रतापूर्वक कहा—"जी! तीर्थराज मेरा ही नाम है।"

गार्ड ने कहा—"एक आदमी तुमसे मिलने के लिये ग्यारह बजे से बाहर बैठा है। वह कोई आवश्यक कार्य से आया है। पर्चा देकर जाओ। वह बहुत घबड़ाया हुआ जान पड़ता है।"

गार्ड की बातें सुन तीर्थराज क्षणभर के लिये चिन्तित हो उठा, परन्तु तत्काल अपनी निर्बलता को दूरकर गार्ड से बोला—"प्रश्नपत्र तो मेरा समाप्त हो चुका है। क्या मैं बाहर जा सकता हूं?" गार्ड ने कहा—"हाँ! इस टेबुल पर अपनी कापी रख दो और जाओ, परीक्षा-भवन में रहने के कारण हमने तुम्हें रोक लिया था।"

तीर्थराज यथास्थान परीक्षा की कापी रख धड़कते हुए हृदय से बाहर आया। उसे अधिक दूर जाना नहीं पड़ा। सीढ़ियों के पास ही उसके गाँव का बुद्धू तेली दिखाई पड़ा। तीर्थराज को देखते ही बुद्धू ने सलाम किया और बिना कुछ कहे फूट-फूटकर रोने लगा।

इस विचित्र घटना ने तीर्थराज को भ्रम में डाल दिया। उसने पूछा—"बुद्धू काका, क्यों रोते हो? क्या बात है? क्या बाबूजी ने तुम्हें लगान के लिये मारा-पीटा तो नहीं है? साफ-साफ कहो, तुम्हारे रोने से मेरा चित्त दुखी हो रहा है।"

परन्तु बुद्धू का रोना बन्द नहीं हुआ। वह और भी तीर्थराज की ओर देख-देखकर अधिक जोर से रोने लगा। यहाँ तक कि हिचकियाँ बँध गईं। कितने मास्टर और लड़के उसका रोना सुनकर इकट्ठे हो गये। सबों ने पूछा—"तीर्थराज! यह क्यों रोता है?" परन्तु तीर्थराज कुछ उत्तर न दे सका।

तीर्थराज के बार-बार पूछने पर, कुछ देर के बाद अपने आँसुओं को पोंछते हुए बुद्धू ने कहा—"बेटा, गाँव तो सब उजाड़ हो गया। कितने ही व्यक्तियों का नाश हो गया। मालिक भी मृत्यु के मुख में पड़े हुए हैं।" इतना कहकर वह फिर रोने लगा।

बुद्धू की बातों ने तीर्थराज को चिन्ता में डाल दिया। उसने पूछा—"बुद्धू काका! क्या बात है। कोई बीमारी या आग लगने से गाँव उजाड़ तो नहीं हो गया?" बुद्धू ने रोते-रोते कहा—"नहीं बेटा, यह सब कुछ नहीं हुआ। खाली चूहावाली बीमारी से सब नाश हो गया।"

चूहेवाली बीमारी का नाम सुनते ही एक मास्टर ने कहा—"हाँ! ठीक कहता है। शहर के बाहर दूर-दूर देहातों में और सोन के किनारे बड़े जोरों से प्लेग फैला हुआ है। कल मैंने समाचार-पत्र में पढ़ा है।"

तीर्थराज बुद्धू को लिवाकर डेरे पर गया और उसे जलपान कराकर पूछा—"तब बुद्धू काका, बाबूजी भी बीमार हैं?" बुद्धू ने कहा—"हाँ बेटा, मरने जैसे हो गये हैं, लेकिन तुम्हें वहाँ आने के लिये मना किया है। वहाँ जो जाता है उसका बचना मुश्किल हो जाता है। इसीलिये मैं यहाँ आया हूँ कि तुमको सचेत कर दूँ। मैं भी भागा जा रहा हूँ। बिहटा में जाकर रहूंगा।" इस भाँति तीर्थराज से बातें कर बुद्धू चार बजते-बजते चला गया।

बुद्धू के चले जाने पर तीर्थराज और दुखी हो उठा—भाँति-भाँति के चिन्ताओं ने उसके हृदय को अशान्त बना दिया। वह इस महा-मारी का हाल स्कूल में पढ़ चुका था। वह जानता था कि इसका प्रकोप भयानक होता है। पिताजी इसी रोग से ग्रस्त हो गये हैं। उन्होंने कहला भेजा है कि मत आना, परन्तु मुझे क्या करना चाहिये? घण्टों यही सोचता विचारता रहा। अन्त में उसने निश्चय किया कि आज ही चलकर मैं पिताजी को देखूँगा।

संध्या का अवसान हो रहा था—एक ओर से दूसरे छोर तक अन्धकार का साम्राज्य बढ़ रहा था। तीर्थराज अकेला स्कूल के बोर्डिङ्ग से निकल, घर की ओर चल पड़ा। खेत और बगीचों की पगडंडियों से घण्टों चलता रहा। किसी मनुष्य का दर्शन तक जैसे अलभ्य हो गया। हाँ! इधर-उधर कभी कुत्तों और कभी शृंगालों के चिल्लाने के शब्द सुनाई पड़ जाते थे। परन्तु तीर्थराज का ध्यान घर पर था। वह निर्भीकतापूर्वक आगे बढ़ता जा रहा था—

अकस्मात् उसे बड़ा दुर्गन्धि का सामना करना पड़ा। उसने नाक पर कपड़ा रख लिया। परन्तु उस दूषित वायु से अपने को सुरक्षित नहीं रख सका—कोसों तक उसे इसी प्रकार की वायु मिली।

आधी रात होते-होते वह गाँव के किनारे पहुँचा। प्रकृति शान्त थी, निशीथ पूर्ण नीरव था। जहाँ आधी रात तक चहल-पहल रहती

थी, आज उसे जनशून्य देख तीर्थराज घबड़ा उठा—सारा गाँव साँय-साँय कर रहा था। गालयों की स्थिति बड़ी भयानक थी—उस उजड़े हुए जनशून्य गाँव में दिन में ही भय लगता था, परन्तु तीर्थराज—साहसी तीर्थराज अकेला बढ़ा जा रहा था।

धीरे-धीरे वह बीच गाँव में पहुँचा और अपने द्वार पर जाकर माँ को पुकारने लगा। परन्तु वहाँ था ही कौन जो उसकी बातों का उत्तर देता। इसी प्रकार उसने अपने सभी पड़ोसियों को पुकारा परन्तु किसी घर से भी जन-शब्द नहीं सुन पड़ा। बिचारा दुखित हो वहीं दरवाजे पर बैठ विचारों में डूब गया।

दुर्गन्धि के कारण उसकी विचारधारा अव्यवस्थित हो गयी। वह गाँव को पार करता हुआ अपने बाग में बाबा राघवदास की कुटिया पर पहुँचा और पुकारा। बाबाजी तीर्थराज की आवाज सुन तुरन्त उठ बैठे और लँगड़ाते हुए किसी प्रकार बाहर आये। तीर्थराज ने प्रणामकर गाँव का समाचार पूछा—बाबाजी ने आशीर्वाद देकर किसी प्रकार इस सर्वनाश का वर्णन किया।

बाबाजी से सभी बातें जानकर वह तुरन्त अपने बाग में दौड़ा। समूचे बाग में झोपड़ियाँ ही झोपड़ियाँ दिखलाई पड़ती थीं। घण्टों तक अपनी झोपड़ी खोजने में हैरान रहा। जिधर जाता था उधर ही से रोने और चिल्लाने की आवाज आती थी। कोई बाहर निकलकर उसकी झोपड़ी नहीं बता सकता था। कितनी झोपड़ियाँ खाली ही पड़ी थीं और कितनों में मुर्दे पड़े सड़ रहे थे। वह नन्दन बन की समता रखने वाला उद्यान आज रौरव के समान भयानक बोध हो रहा था।

तीर्थराज शान्त प्रकृति का बालक था। उसने एक ओर से झोपड़ियों को खोजना आरम्भ किया। खोजते-खोजते एक ऐसी झोपड़ी में पहुँचा जहाँ एक कोने से किसी के कराहने का मर्मभेदी स्वर आ

रहा था, दूसरी ओर जल के लिये कोई रोगी छटपटा रहा था। अन्धकार होने के कारण वह नहीं पहचान सका कि वह कौन है? परन्तु उसकी व्यथा से उसका हृदय भर गया और तुरन्त अपने बाग-वाले तालाब से, पत्तों के दोने में, जल ले आया और बोला—भाई! जल पीलो, परन्तु वहाँ कोई हो तब तो सुने। बालक निराश हो दोने का पानी वहीं रख, पुनः पूर्ववत् ढूँढ़ने में व्यस्त हो गया।

धीरे-धीरे रजनी का अन्त हो गया, अन्धकार जाता रहा। प्रकाश होते ही दस पाँच आदमी झोपड़ियों से बाहर निकले। तीर्थराज ने उनसे अपनी झोपड़ी का पता पूछा—लोगों ने इशारे से बता दिया—तीर्थराज उसी झोंपड़ी में पहुँचा जहाँ रात में उसने दोने में पानी रखा था। धड़कते हुए हृदय से वह उस कुटिया में घुसा। भीतर पहुँचते ही उसने देखा माता और पिता दोनों शान्त पड़े हैं। ये रातवाले पीड़ित उसके माता पिता ही थे—हा ईश्वर! यह क्या हुआ?

माता और पिता दोनों चल बसे, शव पड़ा है। घर में शव के लिये वस्त्र तक नहीं। न सङ्गी है न साथी। कोई बात भी नहीं करता। कैसे माता पिता का अन्तिम संस्कार हो? कुछ देर तक यही सोचता रहा, परन्तु तत्काल ही उठा और उन्हीं फटे पुराने वस्त्रों में लपेट, एक-एक कर माता और पिता को जल में प्रवाह कर आया।

३

माता पिता मृत्यु के शिकार हुए, सारा गाँव अग्नि की लपट में झुलस गया। अन्न-धन चोर उठाकर ले गये। हरवाहे-चरवाहे भाग गये। इस भयानक आकस्मिक विपत्ति से तीर्थराज घबड़ा उठा। उसे

संसार चारों ओर शून्य दिखलाई देने लगा। कोई अपना और हितू नहीं था जो उसे ढाढ़स देता या उसकी सहायता करता। सर्वत्र निराशा दिखलाई देने लगी। ऐसी भीषण स्थिति में उसका अब डुमरी में निर्वाह कैसे होता। वह और अधिक वहाँ नहीं रह सका। दूसरे ही दिन वहाँ से चल पड़ा। दिन भर चलने के बाद अपने एक मित्र के यहाँ पहुँचा। तीर्थराज ने सोचा था, मित्र की शरण में उसे शान्ति मिलेगी। उसके दुःख दूर हो जायेंगे। वह सुख की नींद सो सकेगा। परन्तु हुआ इसके विपरीत। मित्र के माता-पिता ने उसे अपने यहाँ ठहराना उचित नहीं समझा। उन लोगों ने कोरा जवाब दे दिया।

मित्र के माता-पिता के इस दुर्व्यवहार से तीर्थराज को यद्यपि बड़ा दुःख हुआ, परन्तु उसने धैर्य्य नहीं छोड़ा। वह रामायण का अध्ययन कर चुका था। वह कई बार पढ़ चुका था कि धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री इन चारों की परीक्षा विपत्ति के समय में ही होती है। स्त्री तो उसने सोचा उसके पास है ही नहीं, मित्र था, उसकी परीक्षा हो चुकी। अब धैर्य और धर्म रह गये हैं। ये दोनों तो उसके अधिकार की सीमा में हैं। दृढ़ निश्चय किया कि वह विपत्ति में कभी धैर्य्य और धर्म को न छोड़ेगा। जिसके पास धर्म और धैर्य्य नहीं वह मानव नहीं कहा जा सकता। मुझे अब कर्मवीर बनने की आवश्यकता है। विघ्न-बाधाओं से डरना भीरुओं का काम है। साहस और उद्योग ही विपत्तियों पर विजय पा सकती हैं।

सन्ध्या समाप्त हो चुकी थी। मित्र के यहाँ आश्रय न मिलने पर तीर्थराज ने सोचा चलूँ, अब मामा के यहाँ। वे तो अपने आदमी हैं। वहाँ पहुँचने पर निश्चय ही सुरक्षित हो सकूँगा। मामा का गाँव वहाँ से पाँच कोस की दूरी पर था। अँधियारा बढ़ रहा था, परन्तु तीर्थराज ने इन बातों का भय नहीं किया। उसे सभी मार्ग मालूम थे।

उसी भयावनी रात में सोन के किनारे-किनारे पगडण्डी से चलने लगा। गिरता-पड़ता आधी रात बीतते-बीतते मामा के गाँव में पहुँच गया और दर्वाजे पर पहुँचकर आवाज दी—"मामा ! मामा !!"

मामा सो रहा था—तीर्थराज के कई बार पुकारने पर उसकी स्त्री जाग पड़ी और अपने पति को उठाकर बोली—"देखो तो बाहर कौन पुकार रहा है ? कण्ठ-स्वर परिचित-सा जान पड़ता है। हो-न-हो तीर्थ की आवाज है।" तीर्थराज के मामा ने अँगड़ाई लेते हुए कहा—"दुर पगली, मेरा तीर्थ इस आधी रात में कहाँ आ सकता है। आजकल उसकी परीक्षा का दिन है। वह आरा में होगा।" इस प्रकार पति-पत्नी परस्पर वार्तालाप कर ही रहे थे कि फिर वही आवाज सुनाई पड़ी—"मामा ! मामा !!"

रामयश चौंक पड़े। उन्होंने तत्काल कण्ठ-स्वर को पहचान उत्तर दिया—"आया बेटा !" तुरन्त नीचे जाकर किवाड़ खोल दिया। तीर्थराज मामा के पैरों पर गिर पड़ा। रामयश उसे प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देकर घर में लिवा गये। तीर्थराज ने मामी को प्रणाम किया। उसने आशीर्वाद देते हुए घर का समाचार पूछा—विपत्ति-चक्र में पड़े हुए बालक ने आद्योपान्त घटना कह सुनाई, जिसे सुनकर मामी और मामा दोनों रोने लगे। घर के छोटे-छोटे बच्चे चौंक पड़े और माता-पिता को रोते देख स्वयं भी रोने लगे।

मामा-मामी तथा अपने भाई-बहिनों को रोते देख तीर्थराज का भी हृदय द्रवित हो गया। वह भी रो पड़ा। घण्टों रो-धोकर सब शान्त हुए। रात अभी बहुत बाकी थी—सभी लोग सो रहे थे। सबेरा होते ही तीर्थराज का समाचार सारे गाँव में फैल गया। लोग प्लेग का नाम सुनते ही काँप उठे।

गाँव के छोटे-बड़े सभी तीर्थराज से डरने लगे। मारे भय के कोई उसके पास नहीं आता था। सभी डर रहे थे कि कहीं उन्हें भी प्लेग

का शिकार न होना पड़े। गाँव के वातावरण के प्रभाव से उसकी मामी भी वञ्चित नहीं रह सकी। उसके हृदय में भी यह धारणा जम गई कि बच्चों को कहीं प्लेग न धर दबोचे। कहीं हमीं न इस रोग के आखेट हो जायँ अथवा यह संक्रामक रोग बच्चे के बाप को ही न पटक दे। अतएव तीर्थराज की ओर से उसका बर्ताव रूखा होने लगा। मामा यद्यपि ऊपर से कुछ नहीं कहता था, परन्तु उसकी भी अन्तरात्मा डर रही थी।

सत्य है, विपत्ति में कोई साथ नहीं देता। मित्र शत्रु हो जाते हैं। यह वही गाँव था जहाँ पहले जब तीर्थराज आता था, लोग हाथों-हाथ लिये रहते थे। प्यार करते थे तथा बातचीत करने में अपना गौरव समझते थे। परन्तु आज वही तीर्थराज है जिसे प्यार करना तो दूर रहा, लोग बोलने में भी भय कर रहे हैं। देखो, समय का खेल!

तीर्थराज का अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ—वह जिस वस्तु की खोज में यहाँ आया था उसे नहीं मिल सकी, उल्टे दुःख तथा शोक के चक्र में फँस गया—वह मामी-मामा तथा गाँववालों के व्यवहार से उदास रहने लगा।

उसी गाँव में मगनसिंह का मकान था। वह प्रायः कलकत्ते रहा करता था। आजकल वह यहीं था। उसने देखा कि यह लड़का अनाथ है, इसका कोई सङ्गी साथी भी नहीं—इसके मामा भी इसे हटाने का विचार कर रहे हैं। क्यों न मैं इसे अपने फन्दे में फाँस लूँ? अच्छा अवसर है—ऐसा सोचकर वह रामयश के यहाँ गया।

मगनसिंह को अपने दर्वाजे पर देख रामयश बड़ा प्रसन्न हुआ। आदर के साथ बैठाकर कुशलक्षेम पूछने लगा। मगनसिंह ने यथाशक्ति रामयश की बातों का उत्तर दिया। परस्पर एक घण्टे तक बातचीत

करते रहे। अन्त में मगनसिंह ने कहा—"भाई रामयश! तुमने यह कैसी बला सर ले ली है?"

"क्यों? क्या बात है?"—रामयश ने आश्चर्य से पूछा—

"अरे और कुछ नहीं, मैं तीर्थ के बारे में कह रहा हूँ। सारे गाँव में उसके कारण कितनी सनसनी फैल गई है, मालूम है?"—मगनसिंह ने कहा।

रामयश ने कलपते हुए कहा—"भाई मगन! उसे मैंने नहीं बुलाया है—वह स्वयं विपत्ति में फँस चला आया है। उसके माँ बाप विहीन हो गया है। तुम जानते ही हो कि मैं उसका मामा हूँ—मेरे यहाँ न आता तो और कहाँ जाता? इस समय मैं ही उसके लिये एकमात्र रक्षक हूँ। सारे गाँववाले कह रहे हैं कि गाँव में यदि कुछ भी हुआ तो तुम्हीं दोषी होगे, परन्तु क्या करूँ? मेरी स्थिति तो साँप-छछूंदर की-सी हो गयी है। यदि उसे हटाऊँ भी तो कैसे हटाऊँ? कहाँ हटाऊँ? क्या कहकर उसे अपने यहाँ से जाने के लिये कहूँ?"

रामयश की बातें सुन मगनसिंह ने कहा—"भाई रामयश! लड़का बड़ा होनहार है—तुम देखते ही थे कि गाँववाले उसको कितना प्यार करते थे—समय है—समय की बात है। सबका समय एक-सा नहीं रहता। तुम यदि कहो तो मैं इसे कलकत्ता ले जाकर कहीं नौकरी में लगा दूँ। मजे में कमाता-खाता रहेगा और चार पैसा भी इकट्ठा कर लेगा। सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि तुम्हारे सर की बला टल जायगी। यदि गाँववालों को कुछ हो गया तो आजन्म कहने को रह जायगा।"

रामयश—"भाई मगन! मैं तुम्हारा चिरकृतज्ञ रहूँगा—सदैव गुण गाया करूँगा, तुम इस विपत्ति में हमारी सहायता करो। इस समय इसे किसी प्रकार हटाकर ले जाओ। कहीं नौकरी में लगा देना।"

मगनसिंह तो यह चाहता ही था। उसने कहा—"भाई! तुम्हारी आज्ञा ही पर्याप्त है—अब तुम चिन्ता न करो—मैं इसे अवश्य ही ले जाकर कहीं न कहीं नौकरी में लगा दूँगा।"

४

मगनसिंह डरबिन के गिरमिटिया साहब का एजेण्ट था। वह इसी प्रकार निस्सहाय दीन अनाथों को नौकरी के बहाने कलकत्ते फुसलाकर ले जाता और साहेब के हाथ मनमाना रुपये लेकर आजन्म के लिये उन्हें बेच देता था। वे अभागे अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करते थे, पाठकों को आगे स्वयं ही ज्ञात हो जायगा।

इस पापी ने तीर्थराज पर भी अपना फन्दा डाला। उसके मामा को अपने जाल में फँसा हुआ देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसकी वांछनायें खिल उठीं। उसका क्रूर हृदय तृष्णा के हिलोरों में लहराने लगा। उसे यह विश्वास हो गया कि इस होनहार बालक के द्वारा उसे गहरी रकम मिलेगी।

उसी दिन दोपहर को जब तीर्थराज स्नान करने के लिये तालाब पर गया, तो आप भी उसके पीछे-पीछे जा पहुँचा। स्नान करते समय दोनों का साक्षात्कार हुआ। तीर्थराज इसे पहले से ही जानता था, परन्तु लज्जावश वह कुछ न बोला।

अधिक बोलना उसके स्वभाव के विपरीत था। तिसपर इस अवस्था में, जब कि लोग उससे बात करने में नाक-भौं सिकोड़ते हैं, मुँह फेर लेते हैं, साक्षात् प्लेग का अवतार समझ दूर रहने का प्रयत्न करते हैं—कैसे किसी से बातें कर सकता था? उसे भय था कि कदाचित्

लोग उसके बोलने पर उत्तर न दें! मगनसिंह उसके शील संकोच तथा लज्जा से परिचित था। इसलिये पहले स्वयं बोल उठा—

"बेटा तीर्थराज! घर से कब आये? सुनता हूँ, तुम्हारे गाँव में प्लेग आया हुआ है।"

"मामा" उसी ने तो गाँव का सर्वनाश किया—माता-पिता दोनों स्वर्गवासी हो गये, धन लुट गया, गाँव उजाड़ हो गया। जब वहाँ कोई साधन न रहा तब यहाँ आया, यहाँ भी आपत्तियों ने पिण्ड नहीं छोड़ा। गाँव का कोई आदमी मेरे पास बैठना तो दूर रहा, मुझसे बोलना तक नहीं चाहता—पराये को तो जाने दीजिये अपनी सगी मामी का रूखा व्यवहार देख हृदय में आता है कहीं चला जाऊँ। मामाजी, इस समय मेरी अवस्था बड़ी सोचनीय है। आपके सहानुभूतिपूर्ण सम्भाषण ने मेरे दग्ध हृदय पर अमृतवर्षा की है।

"बेटा! कोई न बोले तो किसी का क्या बिगड़ता है। हमलोग बड़े शहर में रहते हैं। वहाँ प्रतिदिन एक न एक बिमारी रहा करती है। कोई अपना काम छोड़कर नहीं भागता, न किसी से बातें करना छोड़ता है? बातें न करना तो नितान्त मूर्खता है।"

"मामाजी! ग्रामीण लोगों में अभी काफी अज्ञानता है। इस बात को मैं जानता हूँ, इसीलिये सब सहन कर जाता हूँ। यदि मेरे पास रुपये होते तो मैं भी आपके साथ ही कलकत्ते चला चलता।"

मगनसिंह मन ही मन फूल उठा। जो वह चाहता था, वही स्वमयेव उपस्थित होता जा रहा था। अपने भावों को छिपाता हुआ बोला—बेटा! अभी इस अवस्था में कलकत्ता! तुम कैसे वहाँ रह सकोगे? चौबीस कोस का शहर है। अपना आरा तो उसकी एक मामूली गली है, पटना कमिश्नरी उसका एक कोना है—बेटा, वहाँ तो हर समय लाखों आदमियों की भीड़ तैरती रहती है। इस पार से उसपार सड़क पार करने में पाँच मिनट लग जाते हैं।

कलकत्ता धन-जन पूर्ण नगरी है। लाखों कंगाल वहाँ जाकर मालामाल हो गये—एक मामूली मोटिया भी प्रातःकाल से सायंकाल तक बीस आने अच्छी तरह कमा लेता है। पढ़े-लिखों का तो जैसे वहाँ राज है। वहाँ बड़े बड़े बन्दरगाह, बड़ी-बड़ी मिलें और हजारों ऐसे कारखाने हैं, जिनमें लाखों आदमी रात दिन काम करते हैं—तीर्थराज! वहाँ सोना बरसता है सोना!

"मामाजी! आप मेरी अवस्था पर ध्यान न दीजिये। अभी मैं लड़का हूँ तो क्या? मैं सब कुछ कर लूँगा। यह मेरा विपत्ति-काल है। मैं सब मुसीबत झेल लूँगा। यदि आप मुझे अपने साथ ले चलें, कहीं पर कोई नौकरी दिला दें तो मैं किसी प्रकार निर्वाह कर लूँगा।"

"तुम कहते हो तो मैं तैयार हूँ, परन्तु पहले तुम अपने मामा से अनुमति ले लो।" मगनसिंह ने कहा।

"मामा से पूछने का साहस नहीं होता। यदि आपही पूछकर सब तय कर लेते तो बड़ी कृपा होती।"

"तीर्थराज, तुम अभी बालक हो। व्यावहारिक बातें नहीं जानते। मेरे पूछने से लोग तत्काल कह उठेंगे कि इनको क्या पड़ी है जो उसे कलकत्ते ले जाने के लिये उतावले हो रहे हैं।

"अच्छा! तो मैं ही कहूँगा। मामा यदि आपसे पूछें तो कह दीजियेगा कि कोई डर की बात नहीं है।"

"हाँ! हाँ! मैं अवश्य कह दूँगा, इसके लिये चिन्ता न करो। चलना ही है तो शीघ्र निश्चय कर लो, क्योंकि मैं परसों यहाँ से चला जाना चाहता हूँ।"

"मैं आज ही उनसे पूछकर सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।"

स्नान करके तीर्थराज घर लौटा। भोजन करते समय उसने मामा से कहना चाहा परन्तु साहस नहीं हुआ। भोजन के उपरान्त जब रामयश विश्राम करने लगे तब निकट जाकर डरते-डरते नम्रतापूर्वक

बोला—"मामाजी मगन मामा कलकत्ते जानेवाले हैं। मैं उनके साथ जाना चाहता हूँ, वहाँ जाकर कोई नौकरी कर लूँगा, आपकी इसमें क्या राय है ?"

"बेटा तुम अभी लड़के हो, तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं, मैं ही तुम्हारे लिये सब कुछ हूँ। अपने मुँह से कैसे कहूँ कि तुम नौकरी के लिये जाओ। जो कुछ हमारे पास है उसी से निर्वाह करो।"

"मामाजी! यह सब ठीक है—मैं अब योग्य हो गया हूँ। मैं जानता हूँ कि आपका प्रेम मुझपर कम नहीं है, परन्तु आप ही सोचिये, निठल्लता बैठकर मैं यहाँ क्या करूँगा? बिना कोई उद्यम के आलसी हो जाऊँगा। इसलिये मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। बराबर पत्र-व्यवहार करता रहूँगा। मैं आपको जीवन पर्यन्त नहीं भूलूँगा।"

"अच्छा बेटा! जब तुममें इतना साहस है तब प्रसन्नतापूर्वक जा सकते हो—मैं सदा तुम्हारी मंगलकामना का इच्छुक हूँ। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल हो।"

तीर्थराज प्रसन्न हो उठा। तत्काल घर से निकलकर एक ही साँस में दौड़ते हुए मगनसिंह के घर जा पहुँचा और मामा की स्वीकृति का शुभ समाचार कह सुनाया।

धूर्तराज मगन मन ही मन प्रसन्न होता हुआ बोला—बेटा! ठीक है, परसों किसी ट्रेन से हम चल पड़ेंगे। तुम सब सामान आदि ठीक-ठाक कर लो।

दूसरे दिन कपड़े-लत्ते लेकर तीर्थराज तालाब पर पहुँच गया। सोडा और साबुन से उन्हें साफ करने में जुट गया। कपड़ों को साफ कर, वह स्नान कर ही रहा था कि मगनसिंह भी आ पहुँचा। बोला—हमलोगों को ठीक बारह बजे रात में ही घर से निकल

जाना होगा। स्टेशन यहाँ से पाँच कोस की दूरी पर है। सबेरे ६।। बजे गाड़ी छूटती है।

तीर्थराज ने कहा—ठीक है, मैं बारह बजे के पूर्व ही सब से मिलकर आपके यहाँ पहुँच जाऊँगा।

भोजन करते समय तीर्थराज ने मामा से कहा—मामाजी! कलकत्ते जाने के लिये मगन मामा ने आज का ही दिन निश्चय किया है। आधी रात को वे यात्रा करेंगे, क्योंकि कलकत्ते जानेवाली पैसेञ्जर अपने स्टेशन से ठीक ६।। बजे छूटती है।

भाञ्जे की बातों ने रामयश को चिन्ता में डाल दिया। खाते-खाते वह सोचने लगा—आज तीर्थराज चला जायगा, यह अभी बच्चा है, परदेश में कैसे रहेगा? माँ-बाप के मर जाने पर मेरे यहाँ आया—परन्तु यहाँ भी नहीं रहने पाया, अनाथ है, असहाय है, इत्यादि बातें सोचते-सोचते रामयश उद्विग्न हो गया। उससे भर पेट खाया। नहीं गया। वह हाथ-मुँह धोकर उठ गया। विश्राम करने के लिये गया। परन्तु वहाँ भी शान्ति नहीं मिली। आशङ्का उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई।

आज अर्धरात्रि के पूर्व ही तीर्थराज उठ बैठा। मामा को जगा कर उनका पैर छूकर नमस्ते किया। पश्चात् आवश्यक सामान एक गठरी में बाँध, भीतर जाकर मामी को प्रणाम किया। यद्यपि मामी का व्यवहार रूखा था, तथापि विदाई के समय उसका भी हृदय कातर हो उठा। उसने सजल नेत्रों से आशीर्वाद दिया।

तीर्थराज और रामयश दोनों मगनसिह के घर गये। मगनसिंह पहले से ही इन लोगों की प्रतीक्षा कर रहा था। तीनों ने स्टेशन की ओर प्रस्थान किया। पाँच बजते-बजते वे स्टेशन पर पहुँच गये। रामयश ने भाञ्जे के लिये टिकट खरीद दिया, थोड़ी ही देर में गाड़ी आई और दोनों थर्ड क्लास के कम्पार्टमेंट में चढ़ गये। स्टेशन

बहुत छोटा था, इसलिये गाड़ी देर तक नहीं रुकी। गार्ड ने सिटी दी और गाड़ी रेंग चली। तीर्थराज ने मामा को प्रणाम किया। मामा कातर नेत्रों से आशीर्वाद देते हुए पत्र की आशा लगाये लौट आया। तीर्थराज तबतक मामा की ओर ललचाई आँखों से देखता रहा जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया।

५

दूसरे दिन पैसेंजर हवड़ा स्टेशन पर पहुँची, दोनों गाड़ी से उतरे। मगनसिंह तीर्थराज को सीधा अपने यहाँ लिवा गया। उसके सुख-, सुविधा का विशेष प्रबन्ध कर दिया। अभी तक वह इस नरपिशाच के पैशाचिक लीला से अनभिज्ञ था।

दूसरे दिन तड़के ही वह गिरमिटिया साहेब के यहाँ गया। साहेब ने मगनसिंह का नाम सुनते ही तुरन्त अन्दर बुलवाया। साहेब को सलाम कर पास ही एक कुर्सी खींचकर वह बैठ गया। साहेब ने पूछा—कहो कोई आदमी लाये हो? "जी हाँ, इस समय केवल एक ही आदमी मिला है, कहिये तो उसे हाज़िर करूँ।"

कल जहाज नेटाल जानेवाला है, उसी से दस कूली भेजे जायेंगे। उसी में एक तुम्हारे आदमी को भी जगह मिल जायगी। इस समय जाओ, सायंकाल उस आदमी को लेकर मुझसे मिलो। तुम्हें खूब इनाम मिलेगा—बड़ा साहेब तुमसे बहुत खुश है। तुमने आज तक साहब को वहुत कूली दिया है।

साहब के मुँह से अपनी प्रशंसा सुन मगनसिंह मन ही मन

अत्यन्त प्रसन्न हुआ और भक्तिभाव से सर झुकाकर पीछे हटता हुआ, फाटक से बाहर हो गया।

मगनसिंह ने डेरे पर आकर तीर्थराज से कहा—बेटा! तुम्हारा काम तो ठीक हो गया, बड़ी शुभ घड़ी में हम लोगों का प्रस्थान हुआ था। लेकिन मैंने परिश्रम भी खूब किया। इस तरह की बातें की कि साहेब को भी मेरा लोहा मान लेना पड़ा। सायंकाल को साहेब के पास चलना है।

"अवश्य चलूँगा मामाजी! आपकी उदारता का मैं ऋणी हूँ। आपने मेरे लिये जो कष्ट उठाया है, उसका उपकार कभी न भूलूँगा।"

संध्या के समय मगनसिंह, तीर्थराज को गिरमिटिया साहेब के पास ले गया। साहेब ने पूछा—क्या यही आदमी है? सिर हिलाकर उसने अपनी स्वीकृति दी। इसके पश्चात् साहेब ने तीर्थराज की ओर अभिमुख हो पूछा—तुम्हारा नाम?

"तीर्थराज"

"तुम नोकरी चाहते हो?"

"जी हाँ!"

"अच्छा! तुम्हें नौकरी मिलेगी, यहाँ से कल तुम्हें जहाज पर सवार हो अपने काम पर जाना होगा।"

"कृपा के लिये धन्यवाद!"

साहेब ने मगनसिंह से कहा—इसे बहुत सबेरे डक पर ले आना। जहाज यहाँ से ठीक आठ बजे खुल जायगा, तुमको वहाँ छः बजे पहुँच जाना चाहिये।

"अच्छा हुजूर, मैं ठीक समय पर इसके साथ पहुँच जाऊँगा" कहकर वह तीर्थराज के साथ चलता बना।

दूसरे दिन बहुत तड़के मगनसिंह तीर्थराज को लेकर डक पर जा पहुँचा, साहब वहाँ पर पहले से ही उपस्थित था—उसने एक दिन

पूर्व ही तीसरे दर्जे के बर्थ में दस कूलियों के लिये स्थान रिजर्व करा लिया था। सबों के आ जाने पर, साहब ने उनको खाने-पीने का सब सामान देकर जहाज में बैठा दिया।

ठीक आठ बजते ही जहाज ने सीटी दी, जेटी की पटरियाँ खींच ली गई। जहाज के भारी भारी लंगर उठा लिये गये। देखते-ही-देखते जहाज भागीरथी के बीचोबीच पहुँच गया और डाइमण्ड हबड़ा की ओर बढ़ा। दो घण्टे में ही सुन्दर बन के उपकूल को पार करता हुआ गंगासागर के निकट पहुँचा। अब यहाँ से ही समुद्र आरम्भ होता था। तीर्थराज ने कभी समुद्र नहीं देखा था। वह इस अपार जलराशि को देख घबड़ा उठा।

आज मातृभूमि का एक होनहार लाल कहाँ जा रहा है? उस बिचारे अबोध बालक को यह ज्ञात नहीं। आज पापियों के कुचक्र से सदा के लिये उसकी जननी जन्मभूमि छूट रही है। उसका प्यारा देश छूटा जा रहा है! आज विश्वास के पवित्र वेदी पर उसकी मूक बलि चढ़ा दी गयी थी।

माँ वसुन्धरे! तेरे कितने ही लाल इस प्रकार ठगे गये, तुम्हारे सहस्रों अबोध बच्चे इन्हीं कुचक्रों में पीसे गये तथा लाखों आत्मायें आजन्म दासता के बन्धन में जा पड़ीं। मातामही! अपने इन कुलांगारों को देख, जो तेरे ही अन्न-जल से पलकर, तेरे ही शरीर के रक्त और माँस को नोच-नोचकर गृद्ध एवं शृङ्गालों की भाँति खा रहे हैं।

देख! एक तेरा पुत्र तीर्थराज है और दूसरा मगनसिंह! एक सुपुत्र है तो दूसरा कुपुत्र; एक देवता है तो दूसरा दानव, मातेश्वरी कहो, मगन समान पुत्रों से तुम्हारा मुख किस प्रकार उज्ज्वल रह सकता है?

जहाज पूर्व वेग से जा रहा था। रात को खा पीकर दसो आदमी अपने कमरे में सो रहे थे, पर तीर्थराज की आँखें खुली की खुली

थीं। वह सोच रहा था कि २० घण्टे बीत चुके, जहाज बढ़ता ही जा रहा है। हम लोग कहाँ काम करने के लिये भेजे जा रहे हैं? घर से चार सौ मील कलकत्ता आये। अब एक हजार मील से भी अधिक इधर निकल आये, मगन मामा ने कहाँ जाने के लिये नौकरी ठीक की है? हम लोग उतरना तो नहीं भूल गये। राह में जहाज कई जगह ठहरा भी था? इसी प्रकार वह सोचता रहा। रात भर उसे नींद नहीं आई। सोचते-सोचते उसका मस्तिष्क थक गया। शिर में पीड़ा होने लगी।

सबेरा होते ही अपने कमरे के कूलियों के जागने पर, तीर्थराज ने सबों से पूछा—कहाँ काम पर जाना होगा, क्या आप लोगों को मालूम है? परन्तु किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। सभी तीर्थराज के ही समान विश्वास में फाँसकर मारे गये थे। वे बिचारे थोड़े ही जानते थे कि वे अफ्रिका जा रहे हैं। उसी दिन सायंकाल साहब उनके कमरे में आया और बोला—तुम लोग घबड़ाना मत, हम ठीक समय पर तुम लोगों को उतार लेंगे। जहाज पर कष्ट है, परन्तु काम में जुट जाने पर यह कष्ट जाता रहेगा। दूसरे दिन सो कर उठने के बाद तीर्थराज ने देखा कि जहाज एक बन्दर पर लगा हुआ है। जेटी के डक पर बड़ी चहल-पहल है। हजारों काले-काले आदमी विचित्र पोशाकें पहिने इधर-उधर घूम रहे हैं। पचासों खोमचेवाले चिल्ला-चिल्लाकर गला फाड़ रहे हैं। सैकड़ों चुरुट, सिगार, बीड़ी, पावरोटी और चाय-चाय पुकार रहे हैं। तीर्थराज ने कभी अपनी आँखों से ऐसा दृश्य तथा ऐसे मनुष्यों का जमघट नहीं देखा था—वह एकदम आश्चर्य में पड़ गया। उसके देश से यहाँ की बातें सभी विचित्र जान पड़ती थीं। वह इस देश को जानना चाहता था। उसने जहाज के एक कूली से पूछा—कहो भाई! यह कौन बंदरगाह है?

कूली ने कहा—कोलम्बो?

अब तीर्थराज के समझने में अधिक विलम्ब नहीं लगा—वह तुरन्त बोल उठा—ओहो! हम लंका चले आये, वही लंका जो हिन्द महासागर में है, हमने भारतवर्ष के मानचित्र में कोलम्बो देखा है। यह लङ्का का प्रसिद्ध नगर तथा व्यापारिक बन्दर है—थोड़ी ही देर में जहाज वहाँ से छूटा और सीधा पश्चिम की ओर जाने लगा।

जहाज हिन्द महासागर के तरंगों से अठखेलियाँ करता हुआ जा रहा था, तीर्थराज चिन्तित था, दुःखी था, भविष्य की आशंका से उसका हृदय धड़क रहा था। आज चार-पाँच दिन बीतने पर उसे निश्चय हो गया कि वह ठगा गया है। अवश्य ही मगनसिह ने उसे किसी टापू में भेजा है।

आज दोपहर में साहब फिर आकर बोला—वेल! तुम लोग इस समुद्री हवा से बचे रहना। तुम लोग अपने कमरे में ही रहना, कल सबेरे ही जहाज तुम लोगों के स्टेशन पर पहुँच जायगा।

कलकत्ते से चलकर सात दिन में जहाज डरबन पहुँचा। साहब तत्काल कूलियों के कमरे में आया और सबों को सावधानी से उतार कर डक पर पहुँचाया। जेटी के बगल ही में उसकी गाड़ी थी। सबों को उसी पर बिठाया और बात की बात में अपने फार्म में पहुँचा दिया।

६

साहेब का फार्म डरबन के बाहर एक सुन्दर उपजाऊ भूभाग में था। यह कोसों लम्बा और मीलों चौड़ा था। इस विस्तृत भू-भाग में

अधिकांश धान और केले की खेती होती थी। यही दक्षिण अफ्रिका का सबसे बड़ा फार्म था, इसमें नित्य हजारों कूली काम करते थे।

तीर्थराज अपने साथियों के साथ इसी फार्म पर लाया गया। उसी दिन सबों को अपना-अपना काम बाँट दिया गया। तीर्थराज को भी केले में पानी देने का काम सौंपा गया। अब तो उसे मगनसिंह की धूर्तता का स्पष्ट पता लग गया। निश्चय ही नौकरी के बहाने वह समुद्र पार दूर देश में भेजा गया है—

उसने स्कूल में पढ़ा था और अफ्रिका के धनकुबेर साहबों के फार्मों के कारनामों से परिचित था। अफ्रिका के मानचित्र में उसने डरबन देखा था। वह जानता था कि यह वही प्रदेश है जहाँ गोरे लोग हिन्दुस्तानी कूलियों से फार्म पर काम कराते हैं। अपने को एकाएक इस प्रकार परतन्त्र देख वह क्षुब्ध हो उठा।

तीर्थराज ने आज तक कभी कुछ काम नहीं किया था। बाल्यकाल में माता-पिता ने उसको बड़े लाड़-प्यार से पाला था। उसने कभी अपने घर के लिये एक लोटा जल भी कूएँ से नहीं खींचा था—निःसन्देह उस बालक ने अपना बाल्यकाल बड़े सुख से बिताया था, परन्तु उसे आज दिन भर पानी खींचना पड़ता है। अफ्रिका की कड़-कड़ाती धूप में परिश्रम करते हुए वह समूचे फार्म में घूमने के लिये विवश होता है! यह तीर्थराज के लिये कष्टकर है—दुःखमय है—यंत्रणामय है—परन्तु अब क्या कर सकता है वह? लाचार है—इसके अतिरिक्त और कोई अन्य उपालम्भ भी नहीं था जिसका अनुकरण करता। न कोई इष्ट-मित्र ही था जिसे अपनी कष्ट-कहानी सुनाता। यद्यपि वहाँ हिन्दुस्तानी कूलियों का आधिक्य था परन्तु सभी आत्मबल-शून्य थे। सैकड़ों धनाढ्य सौदागर भी थे, परन्तु वे नहीं के बराबर थे। गोरों के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं बोल सकते थे।

तीर्थराज ! असहाय तीर्थराज इस प्रकार सर्वत्र से निराश्रित हो—पशुओं की भाँति जीवन व्यतीत करने लगा।

फार्म का मालिक मि० थम्बर क्रूर हृदय का व्यक्ति था। वह तीर्थराज पर सख्ती करने लगा। तीर्थराज इससे और भी दुखी हुआ। वह कितना भी प्रयत्न करता कि साहब को किसी प्रकार प्रसन्न रखे परन्तु साहेब का कठोर हृदय उसे हताश कर देता था।

लगातार दिनभर कठोर परिश्रम करने से कोमल शरीर कुम्हला गया—'अति सर्वत्र वर्जयेत्' के अनुसार, शक्ति से अधिक परिश्रम करने के कारण एक दिन जब वह सायंकाल में, काम से छुट्टी पाकर आया तो उसके सम्पूर्ण शरीर में शूल उत्पन्न हो गया—मारे वेदना के वह बेचैन हो उठा। रात भर वह इसी प्रकार छटपटाता रहा परन्तु किसी ने उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। औषधोपचार न होने के कारण उसका शूल उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। तीर्थराज पीड़ा के कारण अपने काम पर न जा सका।

सबेरे तीर्थराज को काम पर न देख साहब क्रोध से आग बबूला हो गया। हाथ में चमड़े का मजबूत हंटर लिये, दाँत पीसता हुआ वह तीर्थराज के कमरे की ओर चला। वहाँ पहुँचकर इसने बिना पूछे ही उसे एक ठोकर जमा दी। तीर्थराज ने कहा—साहब मुझे क्यों मारते हैं, मैं तो स्वयं पीड़ा से मर रहा हूँ।

इतना सुनते ही साहब और भड़क उठा। उसकी क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। उसने उस निरपराध पर हंटर चलाना आरम्भ किया। पाँच सात हाथ सड़ाक-सड़ाक इस प्रकार जमाया कि तीर्थराज की पीठ फट गयी और उससे रक्तश्राव होने लगा। बिचारा हृदय थामकर रह गया। क्या करता? विवश था!

साहेब इतना पीटने पर भी सन्तुष्ट नहीं हुआ, तुरन्त वह तीर्थराज को काम पर पकड़ लाया। अन्य दिनों की अपेक्षा आज पानी

भरने का बहुत बड़ा बर्तन उसे दिलवाया। दो-चार बार ही निकालने पर बिचारा हाँफने लगा और जमीन पर गिर पड़ा ?

फार्म क्या था, साक्षात् भय का कारागार था। यहाँ की यंत्रणायें रौरव से कम न थीं। यहाँ के विदेशी पूँजीपति किसी प्रकार यमदूतों से कम न थे। मनुष्यता यहाँ से भाग गई थी और पशुबल एक ओर से दूसरे छोर तक दिन-रात थिरकता रहता था। अत्याचार और दमन ही यहाँ का धर्म था।

यहाँ के कूलियों की गणना मनुष्यों में नहीं थी। उनके साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार होता था। उनके रहने की कोठरियाँ अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण तथा अन्धकारमय होती थीं। उनका आहार निकृष्ट तथा बलनाशक था। उन्हें ऋतुओं के अनुसार कभी वस्त्र भी नहीं दिये जाते थे—मालिक उनके खान-पान पर कभी ध्यान नहीं देते थे। इस डरबन के भयंकर कारागार का उद्देश्य था, काम करो या मरो।

७

तीर्थराज की पीड़ा शान्त नहीं हुई। फिर भी वह साहस कर दिन भर काम करता रहा! आज रात को भयंकर वेग से ज्वर ने आक्रमण किया। वह बेसुध हो प्रलाप करने लगा। रात भर वह इसी प्रकार छटपटाता रहा, परन्तु किसी ने उसकी ओर झाँका तक नहीं। कोई, पानी तक को पूछनेवाला न था उसके पास।

ज्वर की अवस्था में वह तृषा के वेग को नहीं रोक सका। स्वयं ही किसी प्रकार लड़खड़ाता हुआ कल के निकट पानी के लिये पहुँचा।

डेकची को पकड़ ज्योंही काँपते हुए उठा था कि जलपात्र लिये हुए धड़ाम से वहीं पथरीली जमीन पर गिरकर मूर्छित हो गया।

तीर्थराज घंटों उसी अवस्था में पड़ा रहा। दस बजे जब एक दूसरा कूली पानी भरने के लिये आया तो उसे उठाकर उसके क्वार्टर में डाल आया। दोपहर के बाद उसे होश हुआ, परन्तु दिन भर ज्वर के कारण बिस्तर से उठ नहीं सका। सायंकाल जब कूली अपने अपने काम पर से लौटे तब एक पुराने कूली ने उसे क्विनाइन की टिकिया खाने के लिये दी। ज्वर दो ही दिन में दूर हो गया।

ज्वर का आना रुक गया। पूर्व शक्ति अभी कम-से-कम पन्द्रह दिनों में आती, परन्तु साहब ने उसे दो ही दिन बाद काम पर बुला लिया। बिचारा क्या करता, डर के मारे उसे काम पर जाना ही पड़ा। पानी की बाल्टी उठा सकने में वह असमर्थ था। बाल्टी नहीं उठाते देख साहेब ने क्रुद्ध होकर पम्प चलाने की आज्ञा दी। यह और कठिन काम था। विवश हो पम्प चलाना पड़ा। अभी पाँच ही सात बार चलाया था कि हाँफने लगा। ललाट पर पसीने की बूँदे एकत्रित हो गई—सर में गर्मी चढ़ गई और मूच्छित हो लड़खड़ाकर वह गिर पड़ा।

साहेब उसकी बेहोशी को बहानामात्र समझ उसके पास पहुँचा और अनायास उसने एक ठोकर जमा दी। साहब के इस भरपूर ठोकर से उसकी मूर्छा भंग हो गई। होश में आने से ही, क्या वह काम करने के योग्य हो सकेगा?

तीर्थराज स्वयं खड़ा नहीं हो सकता था, उसका सिर कई स्थानों में फूट चुका था। साहेब के ठोकर से उसे बड़ी वेदना हो रही थी। फिर भी साहस कर उठने लगा—परन्तु असफल रहा। यह देख, साहब डपटकर बोला—बहाना करता है? उठता है या मँगाऊँ हंटर। मैं तुमको खूब जानता हूँ, तू भारी बदमाश है।

आज निर्दोष तीर्थराज बुरी तरह पीटा गया। सायंकाल को बड़ी कठिनता से अपने क्वार्टर में आया। आज फिर रात्रि में उसे ज्वर ने घर दबोचा। अब वह इस नारकीय जीवन से मुक्त होना चाहता था। ऐसे नारकीय जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा मृत्यु का सहर्ष आलिगन करना उसे कहीं अच्छा प्रतीत होने लगा। रात्रि भर वह ज्वर में पड़ा रहा।

सबेरे तड़के ही साहब पहुँचा। आज तीन कोस आगे चलकर काम करना था—तीर्थराज अशक्त था, विवश था, परन्तु साहब ने एक नहीं माना। उसे नहीं उठते देख, दो कूलियों को घसीट कर नियत स्थान पर ले चलने का आदेश दे वह मोटर सायाकल पर बैठकर चला गया।

साहब क्रूर हृदय का व्यक्ति था—उसे कभी दया से साक्षात् नहीं हुआ था। केवल तीर्थराज पर ही उसकी क्रूर दृष्टि नहीं था। वह सभी कूलियों के साथ इसी प्रकार का व्यवहार करता था—सभी परतन्त्र थे, दासता के बन्धन में जकड़े थे, अपने मानवीय स्वत्व को खो चुके थे, वे इतने दबाये जा चुके थे कि कभी अपना सिर नहीं उठा सकते थे। उनकी आत्मायें निर्बल हो चुकी थीं। मालिक की नृशंसता ने सबों को निरुपाय बना दिया था।

कूलियों को साधारण-साधारण त्रुटियों पर बेंत मारना तो वहाँ का साधारण दण्ड था। अभागे बाल-बच्चों से पृथक हो नौकरी की लालसा से पेट पालने के लिये—परिवार के भरण-पोषण के निमित्त कहाँ से कहाँ आ फँसे थे। सभी सिर धुन-धुनकर पछताते थे पर अब पछताने से क्या लाभ? अब तो बिना बाउन्ड की तिथि पूर्ण हुए जा कहाँ सकते थे! उनके लिये तो सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार था।

८

अत्याचार की भी कोई सीमा होती है—मानव हृदय कहाँ तक सह सकता है? एक न एक दिन घबड़ा ही उठेगा। ठीक यही अवस्था तीर्थराज की भी हुई। वह भी साहेब के अत्याचारों से व्यग्र हो उठा था।

आज इस डरबन के कारागार में उसे दो वर्ष बीत गये। उसने अपनी शक्ति से कहीं अधिक परिश्रम किया। परिश्रम ने ही उसके स्वास्थ्य को चौपट कर दिया। इधर फिर लगातार कई दिनों से उसे ज्वर आ रहा है परन्तु उसे कोई देखनेवाला नहीं—कोई उसका अपना नहीं जो उसे सान्त्वना देता अथवा उसका उपचार करता—दिन रात अपने क्वार्टर में पड़ा-पड़ा पानी-पानी चिल्लाया करता—परन्तु कोई उसके मुख में एक बूँद जल भी छोड़ने वाला नहीं था।

उसे यह भी मालूम नहीं था कि उसकी इस गुलामी का कब अन्त होगा? इस दासता के बन्धन से कब छूटेगा, अभी तो केवल दो ही वर्ष बीते हैं। इन्हीं दो वर्षों में उसके नाकोंदम हो गया था—न मालूम अभी और कितने दिन उसे रहना है—उस समय ऐसे कुलियों की गारन्टी प्रायः बीस वर्ष रहा करती थी।

तीर्थराज इस विपत्ति में पड़ा-पड़ा कभी-कभी यह सोचा करता कि हम कौन थे क्या हो गये तथा भविष्य में अभी और न मालूम क्या होंगे? वह दिन रात चिन्तित रहा करता था। साहेब के दुर्व्यवहार से एकदम ऊब चुका था। फार्म की नीति से उसे अश्रद्धा

हो गई थी। अब वह अपनी आत्मा को और कष्ट देना नहीं चाहता था।

मुक्ति की इच्छा प्रबल हो उठी, परन्तु अयोग्य था—असमर्थ था—अशक्त था। परिश्रम और रोग ने उसे जर्जर बना दिया था। उसके शरीर का बल नष्ट हो चुका था। नवयुवक तीर्थराज आज बलहीन और अशक्त था। परन्तु इस रुग्णावस्था में भी पड़ा-पड़ा वह इस प्रकार अपने मुक्ति का ही उपाय सोचा करता था—इस प्रकार चिन्ताओं ने उसे और भी निर्बल बना दिया। परन्तु मनोबल उसका दिन-दिन बढ़ता ही गया—उसको इच्छा-शक्ति बलवती होती गई।

तीर्थराज ने बहुत कुछ सोचा—परन्तु एक उपाय भी अपने अनुकूल नहीं पाया। निराश हो उसने फार्म से भाग जाना ही निश्चित कर लिया। वह किसी प्रकार भागकर अपने को नहीं बचा सकता था, परन्तु और कोई उसके लिये उपाय ही अवशिष्ट न था। उसने तय किया, मरना यहाँ भी है—फिर क्यों न स्वतन्त्रतापूर्वक मरूँ। यहाँ इस नर्क में घुल-घुलकर मरने की अपेक्षा जंगलों में हिंसक पशुओं के सम्मुख आत्म समर्पण कर देना कहीं अच्छा है।

ज्वर का वेग उग्रतर था—ऊष्ण निःश्वांस घोष करता हुआ निकल रहा था। आज वह पूर्णरूपेण अधीर हो गया था। उसका धैर्य्य सीमा पार कर अन्तिम लक्ष समाप्त कर गया। उसी ज्वर की अवस्था में ही वह उठा और लड़खड़ाता हुआ अनिश्चित दिशा की ओर चल पड़ा। ज्वर के वेग के कारण होश तो ठिकाने था नहीं, अतः जीवन मरण के प्रश्न को सुलझाने की शक्ति कहाँ से रहती।

भयानक काली रात है। हाथांहाथ नहीं सूझता। पास के जंगल में बन्यजन्तु दहाड़ रहे हैं—कभी-कभी गीदड़ और कुत्ते चिल्लाकर प्रकृति के मौनता को भंग कर रहे हैं—मार्ग एकदम सुनसान है—

परन्तु तीर्थराज यह नहीं जानता कि वह कहाँ जा रहा है? आगे उसे क्या मिलेगा और पीछे क्या छूट गया है?

वह आपे में नहीं है—ज्वर के झोंक में चला जा रहा है—उसकी स्मृति नष्ट हो गई है—बुद्धि साथ नहीं दे रही है—विवेक सो रहा है—ज्ञान लुप्त हो गया है—कर्म और धर्म सभी पृथक् हो गये हैं।

शरीर के वायु-वेग से वह गिरता पड़ता फार्म से तीन चार मील दूर निकल गया—अब उसके चलने की शक्ति क्षीण हो चली थी। जितना चल चुका था वही उसके लिये बहुत था। चलते-चलते जब वह थक कर चूर हो गया तब वहीं सड़क के किनारे ही एक विशाल प्रस्तर-शिला पर जा लेटा। अधिक थक जाने के कारण उसे गहरी नींद आ गई। सोये-सोये प्रातःकाल हो गया पर उसकी नींद नहीं खुली। वह निर्जीव की भाँति उसी चट्टान पर लेटा रहा।

६

अफ्रीका का ईस्ट लण्डन रोड आजकल बड़ा ही सुन्दर हो गया है—वह डरबन के एक हरे भरे सौन्दर्य पूर्ण तथा निर्जन भाग से निकलता है—उसपर बहुतेरे फलों के सघन वृक्ष तथा जंगली लतायें हैं, जिनसे यात्रियों का मन प्रफुल्लित हो उठता है तथा उन्हें भ्रमण करने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता—वह सड़क भाँति-भाँति के बनपुष्पों के कारण अत्यन्त सुगन्धपूर्ण तथा रमणीक हो उठता है।

६ बज चुका है। सूर्य्य-रश्मियाँ फैलने लगीं। ठीक इसी समय उस सड़क पर एक घोड़ा-गाड़ी दौड़ी जा रही है। उसमें डरबन का

एक हिन्दुस्तानी सौदागर बैठा हुआ है—कदाचित् वह ईस्ट लंडन जा रहा है। यद्यपि यही दक्षिण अफ्रिका में सबसे धनी भारतीय व्यापारी था, परन्तु साधारण अवस्था में जीवन व्यतीत करने के कारण विशेष प्रसिद्ध नहीं हो सका था। सौदागर मुखाकृति से सभ्य तथा सहृदय प्रतीत होता था और प्रत्यक्षरूप में भी उसने सभ्यता तथा सहृदयता को पूर्णरूप से अंगीकार किया था। जब से वह अफ्रिका आया था, हजारों आदमियों को तन, मन, धन से सहायता पहुँचा चुका था। विपत्तिग्रस्त पीड़ितों को देखते ही वह दुखित हो उठता था। वह दयालु और परोपकारी था। दीनों का उपकार करना ही वह अपना सत्कर्म समझता था—वह जानता था कि हृदय क्या वस्तु है? मानव अधिकार क्या है? तथा आत्मा किसे कहते हैं?

घोड़ागाड़ी हड़हड़ाती हुई ईस्ट लंडन की ओर बढ़ रही थी। सौदागर डरबन से ३, ४ मील निकल आया था। वह बराबर गाड़ी की खिड़की से झाँकता हुआ प्राकृतिक सौन्दर्य देखता हुआ आगे बढ़ रहा था कि अचानक उसकी दृष्टि चट्टान पर विकृत दशा में पड़े हुए एक आदमी पर पड़ी। सबेरे-सबेरे ऐसे निर्जन स्थान में मनुष्य को पड़ा देखकर वह शंकित हो उठा और उसने तुरन्त घोड़ागाड़ी रुकवा दी।

सौदागर के मन में अनेक प्रकार के भाव उदय होने लगे। स्वयं अपनी आँखों से यहाँ रहते-रहते उसने ऐसी कई घटनायें देखी थीं। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह आदमी भी पूर्ण निश्चेष्ट मृतकवत् जान पड़ रहा था। अतः सौदागर ने सोचा अवश्य इसे किसी गोरे ने मार-कर यहाँ फेंक दिया है—वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसके हृदय में दया उमड़ आयी। गाड़ी से उतर कर वह चट्टान की ओर बढ़ा। वहाँ पहुँचकर उसकी दुर्दशा देख बड़ा दुखी हुआ। उसकी हृदय गति ठीक देख उसकी आँखें चमक उठीं। उसे जगाकर उसने पूछा—तुम कौन

हो भाई ? यहाँ कैसे पड़े हो ? कहाँ जाओगे ? मैं तुम्हारे विपत्ति का कारण जानना चाहता हूँ।

सौदागर के पूछने पर तीर्थराज ने बतलाया—मैं ज्वर के वेग में प्रलाप करता हुआ यहाँ तक आ निकला था। आगे न बढ़ सका तो इसी शिलाखण्ड पर बैठ गया। परन्तु मैं बैठा नहीं रह सका। अत्यधिक थक जाने के कारण निद्रा आ गई और मैं सो गया। अभी आपके जगाने से उठा हूँ। मैं यह नहीं कह सकता कि मुझे कहाँ जाना है।

सौदागर सभी बातें समझ गया। उसे मालूम हो गया कि यह किसी साहब के फार्म पर काम करता रहा होगा, बिमारी की अवस्था में सख्ती के कारण भाग आया है। तीर्थराज की अवस्था देख उसे बड़ी दया आयी और उसने इस असहाय को इस प्रकार छोड़ना उचित नहीं समझा। उसने अपने साथ गाड़ी पर बिठा लिया। गाड़ी चल पड़ी।

थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर सौदागर ने पूछा—"कहो! तुम यहाँ कैसे आये और साहब के यहाँ से क्यों भागे ?" क्या उसका व्यवहार तुम्हारे प्रति अच्छा नहीं था ?

तीर्थराज का हृदय भर आया। उसके नेत्रों से जलप्रताप की तरह आँसुओं की झड़ी लग गई। कण्ठ रुद्ध होने लगा। फिर भी साहस कर अस्फुट शब्दों में उसने आदि से अन्त तक अपनी राम-कहानी सुना दी।

उसकी करुण कहानी सुनकर सौदागर का हृदय मोम-सा पिघल गया। उसने कहा—भाई! तुम बड़े विपत्ति में फँस गये। निःसन्देह तुम्हारे मामा के यहाँ का दलाल बड़ा ही दुष्ट व्यक्ति था, उसने तुम्हारे साथ घोर विश्वासघात किया। अब तुम्हारी जान का बचना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव-सा है। तुम यहाँ से किसी प्रकार भी भाग

नहीं सकते। इस धधकते अग्निकुण्ड से छुटकारा पाना सुषुप्तावस्था का स्वप्न देखना है।

तीर्थराज बोला—महाशय! जिस प्रकार भी हो, मेरी प्राण-रक्षा कीजिये, मेरी नाव जीवन-समुद्र की आँधियों से पृथक् हो रही है। मैं आपका चिर ऋणी रहूँगा। मेरी नाव को सुरक्षित उपकूल पर पहुँचा देने की कृपा करें। अब मैं उस नृशंस नरपिशाच के यहाँ नहीं जाना चाहता।

सौदागर ने उसे सान्त्वनापूर्ण शब्दों में अफ्रिका की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराया। उसने विदेशियों के अखण्ड प्रभुत्व का मार्मिक सिंहावलोकन कराया। उसने बहुत समझाया कि तुम किसी प्रकार अपनी तिथि पर्य्यन्त शान्त रहकर जीवन व्यतीत करो, परन्तु तीर्थराज ने नहीं माना। अन्त में उसने तीर्थराज से कहा—साम्प्रत् तुम अस्पताल में भर्ती हो जाओ।

तीर्थराज को सौदागर की इस बात ने मानों स्वर्ग का द्वार दिखला दिया। वह अत्यन्त आनन्द-विभोर हो उठा और इस उपकार के लिए कोटिशः धन्यवाद देने लगा। उसने कहा—इस समय मेरे रक्षक आप ही हैं। आप जो भी उचित सलाह देंगे, मुझे स्वीकार होगा। मालूम होता है ईश्वर ने आपको मेरी रक्षा के लिये ही भेजा है।

सौदागर बोला—जहाँ तक मुझसे होगा मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। इस देश का कानून ही विचित्र है। तुम बिना अवधि समाप्त किये कहीं नहीं जा सकते। यदि इन्कार करोगे तो तुम्हें उतने समय तक जेल में रहना होगा। इससे अच्छा है कि तुम अस्पताल में प्रविष्ट हो जाओ। वहाँ तुम्हारी हुलिया लिखी जायगी और तुम्हारे साहेब के पास भेजी जायगी। जब तुम स्वस्थ हो जाओगे तब तुम्हारा साहेब तुम्हें फार्म पर ले जाने के लिए आवेगा। तुम उस

समय अस्वीकार कर देना। इसके लिये जेल भी जाना पड़े तो पीछे न हटना।

१०

सौदागर ने तीर्थराज को अस्पताल में रहने का प्रबन्ध कर दिया। सबसे पहले वहाँ उसकी हुलिया लिखी गई और अधिकारियों ने उसकी सूचना थाने में दे दी। उसी दिन थानेवालों ने भी यह समाचार फार्मवाले साहेब के पास लिख भेजा।

तीर्थराज को अस्पताल में जाने की बात को सुन साहब आग-बबूला हो गया और मारे क्रोध के दाँत पीसता हुआ तत्काल मोटर मँगवाकर उसे पकड़ लाने के लिए चल पड़ा। शीघ्रता के कारण उसने ड्राइवर को भी नहीं बुलाया। वह आपे से बाहर हो रहा था। क्रोध के मारे उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं थी, उसका सम्पूर्ण शरीर काँप रहा था। उसका ध्यान मोटर चलाने में नहीं था बल्कि वह तीर्थराज को फार्म पर लाकर भाग जाने का उचित दण्ड देना चाहता था।

यह क्या? धड़ाम-धडुम! भारी धक्का लगा। साहेब मोटर से बाहर दूर जा गिरा। मोटर का शीशा, लाइट और स्प्रिंग चूर-चूर हो गया। उसे गहरी चोट लगी। वह कुछ देर तक चुपचाप मृतक के समान पड़ा रहा—परन्तु कुछ ही क्षण पश्चात् उठ बैठा और हाथ पैर झाड़ता हुआ मोटर के पास पहुँचा। उसकी असावधानी के कारण गाड़ी एक वृक्ष से टकरा गई थी। उसने मोटर स्टार्ट करने का जी तोड़ प्रयास किया, पर कृतकार्य न हो सका।

अब तो साहेब और क्रुद्ध हो उठा। इस समय वह इतना क्रोधित था कि तीर्थराज को यदि वहाँ पा जाता तो उसकी खाल उधेड़े बिना

नहीं छोड़ता—परन्तु उस समय वह अस्पताल में था। मोटर स्टार्ट नहीं हुई। वह पैदल ही अस्पताल की ओर बढ़ा। अस्पताल भी कुछ अधिक दूर नहीं रह गया था, बीस ही मिनट में पहुँच गया।

अस्पताल में तीर्थराज को देखते ही साहेब की आँख भट्ठी में से निकाले हुए लोहे के समान लाल हो गई। उसकी भृकुटि तन गई। नासिका से लम्बी-लम्बी निःश्वासें निकलने लगीं। तीर्थराज अस्पताल में पड़ा था और वहाँ साहेब की दाल नहीं गल सकती थी। वह अपने घर के समान मनमाना नहीं कर सकता था। वह अपने हृदय को मसोस कर रह गया। तीर्थराज को ले जाने के लिये अस्पताल के अधिकारियों ने अनुमति न दी। बड़े डाक्टर ने कहा—अभी आप जाइये, एक सप्ताह के बाद यहाँ से ले जा सकते हैं। जबतक यह पूर्ण स्वस्थ्य नहीं हो जाता, हम लोग जाने की अनुमति नहीं दे सकते। साहेब अपना-सा मुँह लिये लौट आया—

आज तीन दिन से तीर्थराज अस्पताल में है—नियमपूर्वक उसकी औषधि हो रही है। ज्वर का प्रकोप दूर हो गया है—अब उसका शरीर कुछ हल्का है। सौदागर नित्य एक दो बार इसके पास आ जाया करता है। उसके खाने-पीने का उचित प्रबन्ध करवा दिया था। स्वयं भी फल आदि ले आया करता था।

सौदागर की कृपा से तीर्थराज आठ ही दिन में पूर्ण स्वस्थ्य हो गया। पौष्टिक आहार के कारण उसकी नष्टप्राय शक्ति पुनः लौट आयी। अब वह पूर्ववत् शक्ति-सम्पन्न हो गया। सौदागर ने उसको एक ही सप्ताह में भविष्य-संग्राम के लिये जो कुछ आवश्यक बातें थीं, उन्हें सिखा-पढ़ाकर ठीक कर दिया था। भावी विपत्ति में किस मार्ग का अवलम्बन लेना होगा, उसे भली प्रकार समझा दिया था।

अब वह भग्न हृदयवाला तीर्थराज कूली न था—अब वह निश्चेष्ट होकर अपनी मर्यादा खोनेवाला का पुरुष न था, हृदय में

आत्माभिमान का भाव अंकुरित हो उठा था। अपने पूर्वजों की मर्यादा का स्मरण हो आया था—अब वह आत्म-बलिदान की अलौकिक शक्ति का अनुभव करने लगा था—उसने साहेब से अपनी शक्ति भर सामना करने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

सप्ताह बीतते ही साहब नियत समय पर अस्पताल में पहुँचा—अस्पताल के अधिकारियों ने तीर्थराज को साहेब के हाथ में सौंप दिया—दोनों अस्पताल से बाहर निकले। बाहर साहब की मोटर खड़ी थी। साहेब ने कड़ककर कहा—"चलो मोटर पर बैठो।"

"मोटर पर किसलिए बैठूँ" तीर्थराज ने कहा—

"फार्म पर क्या पैदल चलोगे ?" साहेब ने गर्जते हुए कहा।

"कैसा फार्म।"

"डैम ! क्या पागल हो गया है ?"

"जबान सम्हाल कर बोलो।" तीर्थराज ने जरा उत्तेजित होकर कहा।

"Bloody-Fool-Rascal, चढ़ता है या नहीं।"

"नहीं, नहीं, नहीं। अब यदि जबान पर लगाम न लगाई तो समझ लेना अच्छा नहीं होगा ?"

"क्या करेगा ?"

"मैं अभी बतला दूँगा कि क्या करूँगा ?"

तीर्थराज के इस विचित्र परिवर्तन पर साहेब के क्रोध का पारावार न रहा। उसने दानवों की तरह दाँत पीसते हुए घूँसा तान कर तीर्थराज पर आक्रमण किया। तीर्थराज पहले से ही सतर्क था। वह साहेब के घूँसे को रोककर स्वयं भी घूँसा चलाने को तत्पर हो गया।

तीर्थराज के इस कृत्य से साहेब मनुष्यत्व खो बैठा। दौड़कर एकदम तीर्थराज से चिपट गया। उसे मोटर की ओर खींचने लगा।

वह बलपूर्वक उसे गाड़ी पर बैठाना चाहता था। परन्तु तीर्थराज भी हट्टा-कट्टा नवयुवक था, वह साहेब के ऐसे-ऐसे पाँच पट्ठों को खेला सकता था। जब तक उसकी आत्मा निर्बल थी, तब तक दबता रहा। आज उसमें आत्मशक्ति है—आत्माभिमान है। साहेब अब उसके लिये एक खिलौना लग रहा था। उसने अपने शरीर को एक झटका दिया और वह लड़खड़ाता हुआ सड़क की बगल में जा लुढ़का।

उसके सारे कपड़े खराब हो गये, टोप गन्दे पानी में भीग गया, चेहरा मोरी के पानी से तर हो गया। दाँत काटकटाता हुआ वह पुनः उठा। शीघ्रता से घूँसा तानकर तीर्थराज की ओर झपटा—परन्तु वह निश्चल रहा—उसने समझ लिया था कि साहबों में घुड़की के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।

साहेब क्रोधान्ध हो रहा था—उसकी दृष्टि तीर्थराज के ऊपर ही थी। वह उसे घूँसे मारने के लिये लपका आ रहा था कि सहसा उसका जूता ड्रेन के ढक्कन से टकराकर पीछे की ओर फिसल गया और वह औंधे मुँह उस पथरीली सड़क पर जा गिरा, जिससे उसके आगे के तीन दाँत टूट गये। उसकी दुर्दशा देख एकत्रित हो गये लोग हँसने लगे।

लोगों को हँसते देख, उस निर्लज्ज साहब को एँड़ी से चोटी तक आग लग गई। वह आगे बढ़कर तीर्थराज से एकदम भिड़ ही गया। कुछ ही क्षण के बाद दोनों में घूँसेबाजी होने लगी।

साहेब और तीर्थराज को लड़ते देख बीसों आदमी इकट्ठे हो गये थे। वे दोनों को छुड़ाने लगे। तब तक पाँच सात गोरे पिल पड़े और तीर्थराज को धक्का देकर अलग कर दिया। परन्तु हटाने से क्या हो सकता था, साहेब तो उसे गाड़ी पर बिठाना चाहता था।

साहेब ने गोरों से कहा—इसे पकड़कर मेरी मोटर पर बैठा

दीजिये। यह बड़ा बदमाश है--फार्म से भाग आया है--इसने मुझे बहुत हैरान किया है। देखिये ये मेरे तीन दाँत टूट गये हैं।

साहेब की दुर्दशा देख आगन्तुक गोरे भी आग-बबूला हो गये और सभों ने दौड़कर उसे पकड़ लिया। अब क्या था? घसीटते हुए मोटर की ओर ले चले, परन्तु उसे बैठा देना बड़ा ही कठिन काम था। घण्टों परिश्रम करने के पश्चात् किसी प्रकार उसे मोटर में बिठा सके। साहब ने तुरन्त गाड़ी स्टार्ट कर दी। थोड़ी ही दूर पर जाकर साहेब ने पीछे की ओर देखा तो तीर्थराज सीट पर नहीं था। साहेब ने मोटर रोक दी और हक्का-बक्का हो इधर-उधर देखने लगा।

११

तीर्थराज चलती मोटर से कूद पड़ा था। यद्यपि उसे बड़ी चोट लगी थी परन्तु उसका आत्मबल उसका रक्षक था। वह दृढ़तापूर्वक उठ खड़ा हुआ। साहब ने दूर से तीर्थराज को देखा। गाड़ी से उतर पकड़ने के लिये दौड़ा—तीर्थराज भी साहेब को अपनी ओर दौड़ा हुआ आता देख—एक ओर भाग खड़ा हुआ।

तीर्थराज को भागते देख—साहेब और तेजी से दौड़ने लगा—परन्तु उस ब्रह्मचारी का कहाँ सामना कर सकता था? वह दूर निकल चुका था—तोंदियल दुराचारी साहेब, उतना दौड़ भी नहीं सकता था। निराश हो, थककर बैठ गया और हाँफने लगा। ब्रह्मचारी की शक्ति के आगे उसे नतमस्तक होना पड़ा।

साहेब कुड़बुड़ा कर रह गया। अब पुलिस की शरण में जाने के अतिरिक्त उसके पास दूसरा चारा न था। हुलिये के आधार पर

तीर्थराज पकड़कर थाने पर लाया गया। दोनों का पृथक्-पृथक् बयान लिया गया। साहेब ने अपने पक्ष का समर्थन करते हुए कहा—यह बड़ा बदमाश है—आज सबेरे से ही यह मुझे हैरान कर रहा है—आज दो सप्ताह से अधिक हुए फार्म पर से भाग आया है। जाने का अब नाम ही नहीं लेता।

आप जानते हैं कि हम फार्मवालों ने इन्हीं लोगों के लिये इतना बड़ा कारबार खोल रखा है—उससे इन्हीं लोगों की जीविका चलती है। हम लोगों का लाभ तो नगण्य है? फिर भी हम लोग रात-दिन इन काले आदमियों की भलाई में लगे रहते हैं।

साहब का बयान समाप्त होने पर पुलिस इंस्पेक्टर ने तीर्थराज से पूछा—क्यों क्या बात है? साहेब का कहना सत्य है? तुम फार्म पर क्यों नहीं जाते?

तीर्थराज ने अपने पक्ष में केवल इतना ही कहा कि अब मैं वहाँ जाना नहीं चाहता।

तीर्थराज के मौन धारण कर लेने पर पुलिस इन्सपेक्टर ने पुनः पूछा—क्यों नहीं जाना चाहते, क्या बात है? साफ-साफ बतलाओ?

दारोगा को छेड़छाड़ करते देख साहेब कुछ घबड़ाया—उसके पेट में खलबली मच गयी—वह कुछ बोलना ही चाहता था कि दारोगा ने साहेब को चुप रहने का संकेत किया। तीर्थराज मौन था। दारोगा ने नम्रतापूर्वक कहा कि साहेब के यहाँ नहीं जाने से तुम्हारी जान नहीं बच सकती। फार्म पर से भागना और वहाँ नहीं जाना, दोनों अवस्थाओं में तुम्हें जेल जाना पड़ेगा।

तीर्थराज—जेल भी फार्म के समकक्ष ही है? हमारे लिये फार्म की यातना जेल से कम नहीं? कारागार में भी मार खाना है और यहाँ भी। मुझे तो इन दोनों स्थानों में अन्तर नहीं मालूम पड़ता।

बहुत समझाने पर भी तीर्थराज को प्रतिकूल देख, पुलिस इन्स-

पेक्टर ने दो गोरे सिपाहियों के साथ उसे साहेब के आधीन कर दिया। सिपाहियों ने उसे मोटर पर बिठाया और आप भी उसके अगल बगल बैठ गये। दो घण्टे में मोटर डरबन के अत्याचारपूर्ण उस कारागार में पहुँच गई, जहाँ नित्य हजारों निरपराध पीसे जाते जाते थे। सिपाहियों ने तीर्थराज को उतार दिया और अपना-अपना इनाम लेकर उसी मोटर से लौट पड़े।

सिपाहियों के चले जाने के बाद, साहेब ने तीर्थराज से कहा कि यदि तुम ठीक से काम नहीं करोगे तो अब तुम्हें समुचित दण्ड दूँगा। बड़े-बड़े बदमाशों को मैंने सर किया है, तुम किस खेत के मूली हो। यदि अब भी काम में ढिलाई हुई तो समझ लो, याद कर लो, पीटते-पीटते बेदम कर दूँगा। थोड़ा-थोड़ा भोजन दूँगा। घुट-घुटकर मर जाना क्या तुम्हें पसन्द है?

तीर्थराज—मैं यदि मर भी जाऊँगा तो दुनिया की कोई विशेष हानि न होगी? तुम्हारी इस कष्टदायिनी यातना से तो मुक्ति मिल जायगी। मैं मरने के लिये पूर्णरूप से तैयार हूँ।

साहेब पहले से भी अधिक तीव्र होकर बोला—तू समझता है कि शीघ्र ही जीवन से छुट्टी मिल जायगी? यह नहीं होने दूँगा। आधा पेट भोजन देकर तुझे निःशक्त कर दूँगा। तू इस प्रकार मर नहीं सकता।

तीर्थराज—मैं भोजन न करूँगा तो क्या कोई जबरदस्ती खिलायेगा?

तीर्थराज की बातों से साहेब के तमोगुण का पारा ब्रह्माण्ड में चढ़ गया। वह शनिश्चर के समान क्रुद्ध हो उठा। तत्काल तीन-चार नौकरों को बुलाकर कहा कि इस बदमाश को कमरे में बन्द कर दो। भागने न पावे और आधे पेट से भी कम भोजन उसे दिया जाय।

तीर्थराज काल कोठरी में बन्द कर दिया गया। अत्याचारों

को सहते-सहते अब उसके शरीर में अनुपम ज्योति प्रकट हो गई थी। उसी ज्योति ने शरीर में एक अद्भुत शक्ति उत्पन्न कर दी थी। वह सभी प्रकार के यन्त्रणाओं को सहन करने के लिये कटिबद्ध हो गया था। दुःख उसे सुख सा जान पड़ने लगा। शूल फूल बन गया। वह विपत्तियों से निश्चिन्त था। यह देखकर साहेब दंग हो रहा था। उसका पशुबल दैव बल के समक्ष हार मानकर भी दृढ़ था।

दूसरे दिन एक कुली तीर्थराज के लिये भोजन ले गया। परन्तु उसने खाने से अस्वीकार कर दिया। उसने कहा मैं किसी का बनाया खाऊँगा। खाऊँगा तो स्वतः अपने हाथ से ही बनाकर अन्यथा न आमरण अनशन करूँगा। उसने सोचा था कि भोजन बनाने के लिये यदि साहेब स्वीकृति देगा तो लोग मुझे निश्चय ही बाहर निकालेंगे, जिससे मैं सूर्यताप और शुद्ध वायु का सेवन कर सकूँगा, अन्यथा इसी बन्द कमरे में घुल-घुलकर काल-कवलित हो जाऊँगा।

उसे ईश्वर पर पूर्ण विश्वास था। उसकी अटल धारणा थी कि विश्वेश एक-न-एक दिन उसके करुण आर्त्तनाद पर तरस खायगा ही। वह अपने दृढ़ संकल्प का स्वर्णिम परिणाम देखना चाहता था और सचमुच वह दिन आ ही गया। वह देख रहा था पशुबल नतमस्तक हो रहा है। साहेब की उग्रता नम्रता में बदल रही है। उसी की दृढ़ता का परिणाम है कि अन्य कुली भी पहले से कम पीटे जाते हैं।

दोपहर के बाद जब साहेब ने सुना कि तीर्थराज ने भोजन लौटा दिया है तो वह क्रोध से थर-थर काँपने लगा। उसे कुछ सूझ नहीं पड़ता था कि वह क्या करे? थोड़ी देर के विचार के बाद, उसे एकदम भोजन न देना ही उसने निश्चय किया।

बात की बात में यह समाचार फार्म के सभी कूलियों को मालूम

हो गई। परन्तु गुलामों की पद-दलित आत्मायें इस पवित्र स्वर्गीय रहस्य को नहीं समझ सकीं। दूसरे ही दिन साहेब की स्त्री को यह समाचार मालूम हुआ। वह तुरन्त साहेब को खोजती हुई फार्म पर आई और बोली—तुम ऐसा कोई कार्य न करो जिससे किसी प्रकार की गड़बड़ी हो। आजकल पुराना समय नहीं रह गया है। देखते नहीं हो ये काले कितना उपद्रव कर रहे हैं। इनसे कितनी गड़बड़ी मच रही है। ये नित्य नई-नई माँगें स्वीकार कराने की चेष्टा में लगे हुए हैं और सरकार भी इन्हीं की बातें मान रही है। सुना है कि तुमने एक कुली को बन्द कर रखा है। यदि वह भूख के मारे मर गया तो उसका उत्तरदायित्व किसपर होगा? इसपर भी तुमने विचार किया है? यदि वह मर गया तो सभी हिन्दुस्तानी बागी हो जायँगे। फिर इतने बड़े फार्म का काम कैसे चलेगा?

साहेब ने हतबुद्धि बन पूछा—तब क्या करना चाहिये?

"वह जैसा चाहे उसे करने दो। यदि वह दो चार दिन के बाद रास्ते पर न आवे तो उसके लिये जेल का मार्ग खुला है।"

साहेब ने स्त्री की बातें मान लीं और तुरन्त तीर्थराज को काल कोठरी से बाहर कर उसे भोजन बनाने के लिये स्वतन्त्र कर दिया। फिर भी चार सिपाहियों का कड़ा पहरा बैठा दिया, जिससे कहीं भागने न पावे। तीर्थराज जो चाहता था वही हुआ। उसने साहेब के धैर्य की सीमा देख ली।

१२

आज चार दिन से तीर्थराज स्वतन्त्र है। न तो किसी का बनाया खाता और न काम ही करने जाता है। दिन भर आनन्द से बनाता

खाता और मनमाना उद्यान में भ्रमण किया करता है। कोई उससे यह पूछने नहीं आता कि तुम काम भी करोगे या नहीं?

एक सप्ताह के बाद—एक दिन मेम साहेब आईं और बोलीं—"तुम्हारी तबीयत तो अब ठीक हो गई है, काम पर किस दिन से जाओगे? काम करने से शरीर में स्फूर्ति आती है। बैठे रहने से आलसी हो जाओगे। परिश्रम से ही तुम इस देश में आरोग्य रह सकोगे। यदि कोई तुम्हें कष्ट हुआ करे तो मुझसे कहा करना, मैं उसका उपचार करवा दिया करूँगी।"

तीर्थराज—मेमसाहेब? आप मुझपर कृपा रखती हैं, इसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। तबीयत तो मेरी अब ठीक है—परन्तु मेरा हृदय इस काम के लिये उत्साहित नहीं होता—जबतक मेरी इच्छा थी मैंने इस निकृष्ट कार्य को किया। यदि आप दयामया हैं तो यहाँ से मुझे मुक्त करा दें।

मेम साहेब यह सुनते ही धीरे से खिसक गईं और जाकर साहेब से सारा हाल कह सुनाया। साहेब ने तुरन्त मुँह बनाते हुए कहा—देखा नम्रता का परिणाम? तुम्हारी दया ने उसे और ढीठ बना दिया है। इन काले आदमियों की औषधि केवल लात-घूसा है। लात के देवता कभी बात से नहीं मानते—इन्हें कोड़े लगाते रहो, ये काम करते रहेंगे। तुम्हारा सारा प्रयत्न दया निगल गयी। अब देखो मैं किस प्रकार उसे राह पर लाता हूँ।

तीर्थराज ने दूर ही से साहेब को हंटर लिये हुए आते देखा—उसकी चाल से ही उसने समझ लिया कि साहेब इस समय अपने में नहीं है; इसलिए उसे भी सतर्क हो जाना चाहिये। बात की बात में साहेब उसके निकट आ पहुँचा। तीर्थराज ने भी एक बड़ी लकड़ी उठा ली।

उसके हाथ में लकड़ी देख साहब सहम गया और कुछ दूर पर

ही ठहर कर तीर्थराज से बोला—तुम अब काम पर क्यों नहीं जाते? क्या इसी प्रकार बैठे-बैठे मुफ्त खाना चाहते हो?

तीर्थराज—मुफ्त का क्यों खाऊँगा? तुम्हारे यहाँ मेरी दो वर्ष की मजदूरी बाकी पड़ी है। मैं दो वर्षों के परिश्रम से वर्षों बैठकर खा सकता हूँ।

साहेब—तुम्हारी मजदूरी मैंने पाई-पाई चुका दी है। अब जितना दूसरे पाते हैं उतना ही तुम्हें भी दिया जायगा। क्या औरों से तुम अधिक काम करते थे?

तीर्थराज—काम की कोई बात नहीं, प्रश्न तो हानि लाभ का है। दूसरे कुलियों में सोचने की माद्दा न हो तो क्या मैं भी न सोचूँ? दूसरे यदि मान-मर्यादा, कीर्ति-गौरव, प्रतिष्ठा भूल बैठें तो क्या मैं भी भूल जाऊँ, कदापि नहीं! तुम लोगों ने भारतीयों के साथ भयंकर अन्याय किया है—हमीं लोगों ने इस उजाड़ जंगल को उर्वरा और रमणीक बनाया है—हमीं ने खून-पसीना एक कर तुम्हारी सत्ता की नींव मजबूत की है। हमारे रक्त और माँस से सनी हुई पृथ्वी पर तुम लोग चैन की बंशी बजा रहे हो। तुम्हारी यह विलासिता और वैभव के निर्माता हम हैं? बोलो! संसार में सभ्यता की डींग मारने वाले सभ्यों! यह कैसा अन्धेर और अत्याचार है? यदि मूर्ख कुली न समझें तो इसमें मेरा क्या दोष? मैं अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिये प्राण दे दूँगा परन्तु तुम्हारा गुलाम बनकर नहीं रह सकूँगा।

साहेब—तुमने अब अत्यधिक धृष्टता दिखलानी आरम्भ की है—हम यहाँ भारतीयों के बल पर गुलछर्रे नहीं उड़ाते और न भारतीयों के द्वारा ही हम लोगों ने इस देश को विजय किया है—हमने इसे डचों से लड़कर जीता है। हाँ तुम लोगों ने इसे काट-

छाँटकर चौरस कर दिया है तो क्या तुम लोगों ने उसका उचित पुरस्कार नहीं पाया ?

तीर्थराज—पुरस्कार क्या पाया, खाक या पत्थर ! इसी अत्याचार का नाम पुरस्कार है ? इसी नारकीय यातना को क्या पुरस्कार कहते हैं ?

साहेब—कृतघ्न यदि इसे पुरस्कार न समझें तो इसमें हम लोगों क्या दोष ? हमने अपना द्रव्य पानी की तरह बताया—उसके बदले में तुम लोगों ने परिश्रम किया।

रुपये पानी की तरह बहाया ? क्यों ? किस लिये ? अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये। हमारे परिश्रम का क्या उचित मूल्य भी मिलता है ? मेरे ही परिश्रम का पुरस्कार तुमने क्या दिया—बोलो ? ये शब्द तीर्थराज ने कुछ उत्तेजित होते हुए कहे—

साहेब—चुप रहो ? मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहता।

तीर्थराज—मैं भी तुमसे वादा-विवाद करना व्यर्थ समझता हूँ।

साहेब—मैं जानता हूँ तुम बहुत ढीठ हो गये हो। जबाब दो, काम पर जाओगे या नहीं ?

तीर्थराज—कहता हूँ—और बार-बार कह रहा हूँ कि नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा, कभी नहीं जाऊँगा।

साहब—अच्छा ! इसका फल तुम्हें शीघ्र भोगना होगा। मुझे साधारण व्यक्ति न समझना। तुम्हें इसी प्रकार छोड़ न दूँगा—बिना छठी का दूध याद दिलाये कभी चैन न लेने दूँगा।

इतना कह साहेब बड़बड़ाता हुआ बँगले पर चला गया। मेम साहेब को बुलाकर बोला—यह आदमी तो एक नम्बर का बदमाश है। मैं नहीं जानता था कि यह इतना बड़ा शैतान निकलेगा। तुम्हारे

पास से उठकर जब मैं उसकी ओर चला तो उसने भी एक लकड़ी उठाली और मेरी ओर शिकारी जैसी आँखों से देखने लगा। चुप रह जाना ही मैंने उचित समझा। दो चार बातें कर लौट आया। अब बताओ क्या करना चाहिये?

१३

आज साहेब और मेम दोनों दिनभर अव्यवस्थित रहे। लाख सोचने पर भी उन्हें कोई मार्ग नहीं मिला। अन्त में दोनों ने यही निश्चय किया कि पुलिस द्वारा जेल भेज दिये जाने की धमकी दी जाय। सम्भव है कि रास्ते पर आ जाय और काम पर जाने लगे।

दूसरे ही दिन साहेब ने एक नौकर को पुलिस इन्सपेक्टर के नाम चिट्ठी देकर चौकी पर भेजा। थानेदार, साहब का परिचित मित्र था। उसका समाचार पहुँचते ही वह दो गोरे सिपाहियों के साथ आ पहुँचा।

दो गोरों के साथ इन्सपेक्टर को आता देख समूचे फार्म में खल-बली मच गई। कूलियों के होश उड़ गये, जो लोग इधर-उधर बैठे गप्पें मार रहे थे वे भी जी जान से काम में जुट गये। साहेब ने इन्स-पेक्टर से आगे बढ़कर हाथ मिलाया और उसे अपने ड्राइङ्गरूम में ले गया।

पहले पाँच-सात मिनट तक तो इधर-उधर की बातें होती रहीं। पश्चात् इन्सपेक्टर ने पूछा कि आपने किस आदमी के बारे में पत्र लिखा है? क्या वही तो नहीं जो आपके यहाँ से ईस्ट लण्डन भाग गया था?

"हाँ ! हाँ !! वही, उसी के बारे में मैंने पत्र भेजा था।"

"क्या वह काम करना नहीं चाहता ?"

"नहीं, वह पूरा शैतान है, उसी के कारण मेरे हजारों कूली ढीठ होते जा रहे हैं।"

"क्या कोई उसके ऊपर सख्ती तो नहीं की जाती ?"

"सख्ती का तो नाम ही न लीजिये, हमारे फार्म से अधिक और कहाँ सुविधा मिल सकती है ? क्या इसी पर सख्ती होती है और किसी कूली पर नही। कोई ऐसा नहीं करता। इसके व्यवहारों से विवश होकर मुझे ऐसा करना पड़ता है।"

"इस कुली का क्या नाम है ?"

"तीर्थराज"

"उसकी उम्र क्या होगी ?"

"सोलह सत्रह वर्ष।"

"तब तो अभी लड़का है।"

"है तो लड़का ही, परन्तु आफत का परकाला है।"

"वह क्या चाहता है--आपने उससे कुछ पूछा है ?"

"पूछूँ क्या ? वह तो सीधे मुँह बात भी नहीं करता। किसी प्रकार काम करने के लिये तैयार नहीं होता।

"तब तो बड़ा ही हठी और मूर्ख जान पड़ता है।"

"जी !"

उसे एक नहीं बीसों आदमियों ने समझाया। स्वयं मेम साहेब ने कितना कहा, किन्तु उसके हृदय में एक बात न जमी।"

"उसे मेरे सामने बुलाइये ?"

साहेब ने तुरन्त घण्टी बजाई—नौकर आया और साहेब का आदेश पाते ही बंगले से निकल कर तीर्थराज के पास दौड़ता हुआ गया। साहब का सन्देश सुनकर उसने जाने से स्पष्ट अस्वीकार करते

हुए कह दिया कि मैं किसी के पास नहीं जा सकता। यदि साहेब को आवश्यकता हो तो वह स्वयं मेरे पास आवे। नौकर ने तीर्थराज का सन्देश साहेब के पास जाकर कह सुनाया।

नौकर के मुख से, इंसपेक्टर के सामने ही, तीर्थराज का सन्देश सुनकर साहेब मारे अपमान के गड़ गया। इंसपेक्टर भी उसके उत्तर से गम्भीर हो गया। उसे निर्णय करने में देर न लगी कि इसकी तह में अवश्य कोई रहस्य छिपा है, नहीं तो काले आदमियों में इतना साहस कहाँ कि वे गोरों का सामना कर सकें।

तुरन्त ही इन्सपेक्टर ने अपने एक गोरे सिपाही को उसे बुला लाने के लिये भेजा। गोरा सिपाही साहेब के नौकर को लेकर तीर्थ-राज के पास गया और इन्सपेक्टर का सन्देश सुनाया।

"कौन इन्सपेक्टर?" तीर्थराज ने प्रश्न किया।

"स्थानीय पुलिस इन्सपेक्टर।"

"किसलिये बुलाया है?"

"बुलाया है जाँच करने के लिये। काम पर न जाने का तुमपर अभियोग लगाया गया है।"

तीर्थराज प्रसन्न होता हुआ बोला—अभियोग लगाया गया है तो मुकदमा अवश्य चलेगा। यही मैं चाहता भी था, अच्छा चलो, अब मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।

इन्सपेक्टर ने तीर्थराज को सामने उपस्थित देख पूछा—क्या तुम्हारा ही नाम तीर्थराज है?

"जी हाँ!"

"तुम साहेब के यहाँ कितने दिनों से काम करते हो?"

"लगभग दो वर्ष से।"

"अब काम करने से क्यों इंकार करते हो?"

"यह मेरी इच्छा का प्रश्न है?"

"जबतक तिथि पूरी नहीं होती, तबतक तुम्हारी इच्छा का कोई मूल्य नहीं ?"

"मैं तिथि का गुलाम नहीं हूँ। मैं अपने को बन्धक-मुक्त समझता हूँ।

"क्यों ! शर्त समाप्त हुए बिना तुम जा कैसे सकते हो ?"

"कैसी शर्त ? शर्त-वर्त मैं कुछ नहीं जानता।"

अब इन्स्पेक्टर ने साहेब की ओर अभिमुख हो पूछा—क्या इससे शर्तनामा नहीं लिखवाया गया है।

"क्यों नहीं ! क्या बिना शर्तनामे के ही मैं इसे यहाँ ले आया ?"

सभी बातें सुनकर इन्स्पेक्टर ने तीर्थराज से कहा—बोलो क्या चाहते हो, जेल या साहब के यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहना ?

"मैं न जेल जाना चाहता हूँ और न साहेब के यहाँ रहकर काम करना चाहता हूँ, मैं तो न्याय चाहता हूँ। यदि मैंने कोई कानून भङ्ग किया है तो दण्ड के लिये तैयार हूँ।

इन्स्पेक्टर ने साहब को कुछ संकेत किया। साहेब ने भी अपना सिर हिलाकर अनुमति दे दी। इन्स्पेक्टर ने सिपाहियों को उसे पुलिस स्टेशन के हवालात में ले चलने का आदेश दिया। सिपाहियों ने तदनुसार आज्ञा का पालन किया। रात भर वह हवालात में पड़ा रहा—दूसरे ही दिन तीर्थराज मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया।

आज कचहरी में बड़ी भीड़ थी। एक तो दक्षिण अफ्रिका में भारतीयों का आन्दोलन चल ही रहा था—दूसरे तीर्थराज के असहयोग ने और भी क्रान्ति मचा दी थी। हजारों भारतीय, जिन्हें राष्ट्रीयता का अभिमान था, मानापमान का ख्याल था, हृदय में देश के लिये स्थान था—इस मुकदमे की कार्यवाही देखने के लिये झुण्ड के झुण्ड उमड़ पड़े थे।

ठीक समय पर मुकदमा आरम्भ हुआ—साहेब की ओर से एक अटर्नी था और तीर्थराज अकेला था—इसकी ओर से कोई अटर्नी या वकील न था। भारतीयों ने चाहा कि एक सुयोग्य बैरिस्टर खड़ा किया जाय, परन्तु तीर्थराज ने अस्वीकार कर दिया। वह जानता था कि इससे कोई लाभ न होगा। जिसने मुकदमा चलाया है उसी का कानून है, उसीके आदमी कानून का मनमाना उपयोग करते हैं। ऐसी स्थितिमें बैरिस्टर या वकील क्या कर सकता है?

साहेब के अटर्नी ने अभियोग पढ़कर सुनाया—"तीर्थराज बीस वर्ष के शर्तनामे पर भारत से आया था—अभी केवल दो ही वर्ष व्यतीत हुए हैं और यह भागने की चेष्टा कर रहा है। अभी थोड़े ही दिन की घटना है कि यह फार्म से भाग गया और ईस्ट लण्डन में पकड़ा गया। वहाँ से इसे लाने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अब काम भी करना नहीं चाहता। अभी दो दिन हुए यह फिर भागा जा रहा था। जब साहेब ने पीछा किया तो यह मरने-मारने के लिये उद्यत हो गया। ऐसी स्थिति देख, साहेब को पुलिस की शरण लेनी पड़ी।

अटर्नी का अभियोग सुनकर मजिस्ट्रेट ने तीर्थराज से पूछा—तुम्हारा कोई वकील है? तीर्थराज ने उत्तर में कहा—मैं स्वयं अपनी वकालत कर लूँगा। मेरे पास कोई भी वकील या बैरिस्टर नहीं है।

तीर्थराज की ओर से मुड़कर मजिस्ट्रेट ने साहेब से सवाल किया—

"क्या यह कुली आपके यहाँ रहता था?"

"जी" साहेब ने उत्तर दिया।

"क्या आपने इसपर कोई सख्ती की?"

"कभी नहीं—मैं तो इन लोगों को अपने लड़के के समान प्यार करता हूँ।"

"तब यह आपके यहाँ से क्यों भागना चाहता है? बिना सख्ती के कोई इस प्रकार नहीं भाग सकता।"

"मैं सत्य कहता हूँ। आज तक इसके प्रति कोई दुर्व्यवहार नहीं किया गया—परन्तु न मालूम क्यों यह ऐसा कर रहा है? यह इसकी शरारत मात्र है।"

"परन्तु आपका अटर्नी कहता है कि उसे आये दो वर्ष बीत गये—इधर कुछ दिनों से यह बिगड़ा है—यदि यह शरारती होता तो पहले दिन से ही शरारत से बाज न आता।"

"मैंने उसके साथ कोई सख्ती नहीं की।"

"मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता?"

"पर मैं ठीक कह रहा हूँ, केवल एक दो बार डाँटा अवश्य है।"

"आप इससे क्या चाहते हैं?"

"मैं उससे काम लेना चाहता हूँ?"

"यदि वह काम करना स्वीकार न करे?"

"ऐसी अवस्था में उसे उचित दण्ड मिलना चाहिये।"

"क्या आप इससे Indemnity फीस लेकर छोड़ सकते हैं?"

"जी नहीं?"

साहेब से बातें कर मजिस्ट्रेट ने तीर्थराज की ओर मुड़कर पूछा—क्या तुम कुछ कहना चाहते हो?

"यदि आज्ञा मिले तो अवश्य कहूँगा।"

"क्या कहना चाहते हो? कहो, जो कुछ कहना चाहते हो निर्भय होकर कहो।"

"मैं असहाय हूँ, न्यायालय से न्याय पाने का अभिलाषी हूँ। साहेब के अटर्नी ने जो कहा है कि मैं बीस वर्ष के शर्तनामे पर आया हूँ, यह निरा असत्य तथा प्रपंचपूर्ण है। साहेब मुझे यहाँ धोखा देकर लाया है। मैं शर्तनामे की कोई बात आजतक नहीं जानता। अटर्नी

ने जो कुछ कहा है, उसमें केवल यही सत्य है कि मैं दो वर्ष से साहेब के यहाँ काम कर रहा हूँ। मैं अत्याचार से पीड़ित होकर भागा था। अब साहेब के यहाँ नहीं रहना चाहता। साहेब के उन अत्याचारों का उल्लेख अटर्नी ने अपने अभियोग में नहीं किया है...

दिन रात कठिन परिश्रम करने पर भी साहब को सन्तोष नहीं हुआ। यह चाहता था मैं जानवर बन जाऊँ। यह अपमान मेरे लिये असहनीय हो गया। इसके अत्याचारपूर्ण व्यवहार से मैं बीमार हो गया। इसने मेरी रुग्णावस्था में भी काम करने के लिए मुझे हंटरों से पीटा—मारते-मारते मूर्छा आ जाने पर भी इसने ठोकरें मारीं—इसका प्रमाण मेरी पीठ और पैर पर मौजूद है...

साहेब सदैव मदिरा में मस्त रहा करता है—शराब के नशे में इसे यह ज्ञान नहीं रहता कि वह क्या कर रहा है—यदि इस नारकीय कृत्य को कानून सत्य समझे तो इस कानून को मैं मान्यता नहीं दे सकता। मैं न्याय चाहता हूँ।"

तीर्थराज की मर्मभेदी बातें सुन मजिस्ट्रेट बोला—मैंने दोनों पक्ष की बातें सुन लीं—मैं इस मामले की गहराई तक पहुँच गया हूँ—कानून परिवर्तन करने का अधिकार मुझे नहीं है—परन्तु हाँ! इसके अन्तर्गत जहाँ तक हो सकेगा न्याय करने की चेष्टा करूँगा।

मजिस्ट्रेट ने तीर्थराज से पुनः पूछा—मैं तुम्हारी यह बात कैसे मान लूं कि शर्तनामा नहीं लिखा गया? देखो! मेरे सामने यह शर्तनामा है जिसे साहेब के अटर्नी ने पेश किया है। इसमें यह तुम्हारे अंगूठे की छाप है।

तीर्थराज बोला—शर्तनामे को मैं देख रहा हूँ—परन्तु यह नहीं कह सकता कि कब मुझसे यह अँगूठे की छाप ली गई—अंगूठे का निशान लेना तो उन लोगों के लिये है जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, मैं तो एक नहीं तीन-तीन भाषा में लिख पढ़ सकता हूँ। यह अंगूठे का

निशान भी नकली है। मैं जानता हूँ और मुझे याद है कि मैंने आज तक कभी किसी अवस्था में अंगूठे का निशान नहीं लगाया है।

मजिस्ट्रेट—(अटर्नी की तरफ देखकर) यह शर्तनामे की सत्यता को चुनौती दे रहा है—क्या आप लोग स्वीकार करते हैं ?"

अटर्नी—बॉण्ड की सत्यता सिद्ध करने का हक हमलोगों का नहीं है—बल्कि उसका है जो उसे असत्य मानता है।"

मजिस्ट्रेट—जिसने असत्य समझा, उसने तो अदालत के सन्मुख कह दिया—अब आपलोग उसे सत्य सिद्ध करें—मैं आपलोगों को एक माह का अवसर देता हूँ—आप प्रमाण प्रस्तुत करें।

मजिस्ट्रेट ने तीर्थराज से कहा—तुम जमानत पर छोड़े जा सकते हो। क्या तुम्हारा कोई जमानतदार है ?

सौदागर ने तुरन्त एक अटर्नी के द्वारा जमानत की अर्जी दे दी। मजिस्ट्रेट ने सौदागर की जमानत स्वीकार कर ली और तीर्थराज को छोड़ दिया गया।

१४

ईश्वर न्याय-अन्याय देखता है। उसके यहाँ देर है, पर अंधेर नहीं। न्याय से ही संसार चल रहा है। परन्तु लाखों कुलांगार उसकी अवहेलना कर मनुष्यत्व खो, स्वयं दुःख भोगते हैं और दूसरों को भी अपने कुचक्र में डाल, किसी योग्य नहीं रहने देते।

साहेब भी इसी प्रकृति का व्यक्ति था। कचहरी से सीधे घर आया। मेम को सब हाल सुना तुरन्त अटर्नी के यहाँ दौड़ गया। इस ज्ञानान्ध ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि इस छोटी-सी बात के

लिये उसे इतना झंझट उठाना पड़ेगा। अटर्नी ने साहेब को देख हाथ मिलाया और प्राइवेट रूम में ले जाकर बैठने का संकेत किया।

साहेब ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—अब क्या करना चाहिये? केस तो काफी उलझ गया है। सबसे पहले तो निशान पहचानने वाले सिद्धहस्त को बुलाकर उसे यह कहने के लिये राजी कर लिया जाय कि यह उसी का हस्ताक्षर है। परन्तु इसमें भी अड़चन है। असली अँगूठे का निशान मजिस्ट्रेट के पास रखा है।

"तब तो मामला और खराब हो जायगा।"

"तब क्या किया जाय?"

"अच्छा होगा उस आदमी को बुलाया जाय अथवा उससे पत्र व्यवहार किया जाय, जिसके द्वारा इसका कनट्राक्ट हुआ है।"

"परन्तु समय इतना कहाँ है?"

"यह सब कोई उपाय काम न देंगे, चलिये एक दिन स्वयं मजिस्ट्रेट से ही मिल लें। देखा जाय, उनका क्या विचार है। यदि मान गये तब तो हैरानी-परेशानी की कोई बात नहीं। जेल ही भेज देंगे तो भी ठीक है।

साहेब ने वकील के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। घण्टों तक दोनों इस बात पर विचार करते रहे कि मजिस्ट्रेट से किस प्रकार बात आरम्भ की जाय। किस प्रकार उसे अपने अनुकूल किया जाय? बिना उसे मिलाये कुछ काम नहीं हो सकता। हवाई किला काम नहीं दे सकता। मुकदमा गम्भीर हो गया है।

दूसरे ही दिन संध्या के समय साहेब अटर्नी के साथ मजिस्ट्रेट के बंगले पर लम्बी डाली लेकर जा पहुँचा। अटर्नी का कार्ड पाकर मजिस्ट्रेट ने उन्हें चपरासी से अन्दर बुलवाया और उनके आने का कारण पूछा।

अटर्नी ने नम्रतापूर्वक कहा—एक शर्तनामे की सत्यता सिद्ध करने का मुकद्दमा आपके कोर्ट में है, जिसकी तिथि अत्यन्त निकट आ गई है। आपने उसके लिये प्रमाण माँगा है।"

"हाँ! उसके लिये प्रमाण की आवश्यकता तो अवश्य है।"

"हमलोग कैसे प्रमाण उपस्थित करें जब कि शर्तनामा यहाँ लिखा ही नहीं गया। जिनके सम्मुख लिखा गया है वे भी यहाँ नहीं हैं। उनको उपस्थित करना असम्भव हो रहा है।"

"ठीक है, किन्तु बिना प्रमाण कुछ नहीं हो सकता। यह निशान एकदम जाली है। वह पढ़ा-लिखा आदमी है। उसके आँख में इस प्रकार धूल नहीं झोंका जा सकता। भारतीयों पर अब अत्याचार करना सहज नहीं है। जब से गाँधी समझौता हुआ है, तब से ये लोग और जाग्रत हो गये हैं। यह केस बड़ा पेचीदा है। यदि इसमें थोड़ा भी अन्याय हुआ तो सभी भारतीय इसे लेकर पार्लियामेंट तक दौड़ पड़ेगें और इतनी अशान्ति उत्पन्न कर देंगे कि रोकना कठिन हो जायगा। मैं भारतीयों को जान गया हूँ। अकेले गांधी ने सारे अफ्रीका के प्रवाह को अवरुद्ध कर दिया था।

अटर्नी—यदि आप इस प्रकार की बातें करेंगे तो कैसे हम अंग्रेजों का काम चलेगा?

मजिस्ट्रेट—परन्तु कानून का उल्लंघन मैं कैसे कर सकता हूँ? समय और स्थिति का भी ध्यान रखना अनिवार्य है। जानते हो विपक्षी का अभियोग कितना तगड़ा है?

साहब करबद्ध होकर बोला—आप यदि उसे मुक्त कर देंगे तो अन्य कूलियों पर इसका अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ेगा। हमलोगों की बड़ी क्षति होगी। हमारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायगी। ये भारतीय तब तो सर पर सवार हो मनमाना करने लग जायेंगे।

मजिस्ट्रेट—तब आप ही लोग बतावें कि कौन-सा ऐसा मार्ग है

जिससे न्याय की मर्यादा भी रह जाय और दोनों पक्ष की प्रतिष्ठा भी बनी रहे ?

अटर्नी—हमलोगों का भी यही ध्येय है कि मामला शान्तिपूर्वक समाप्त हो जाय और प्रतिष्ठा बनी रहे ।

मजिस्ट्रेट—अच्छा, आपलोग जाइये । तारीख के दिन कोर्ट के समय से पहले ही मुझसे मिल लें ।

दोनों आदमी साहेब को लम्बी दण्डवत कर अपने-अपने घर की ओर लौट पड़े ।

१५

आज फिर डरबन का न्यायालय मनुष्यों से खचाखच भरा है । आज तीर्थराज के मुकदमे के निर्णय का दिन है । जनसमुद्र यह जानने के लिये उमड़ पड़ा है कि फार्म वाले साहेब किस प्रकार शर्तनामे की सत्यता सिद्ध करते हैं ?

मजिस्ट्रेट ने अर्दली द्वारा साहेब और अटर्नी को अपने पास प्राइवेट रूम में बुलाकर कहा—देखो शर्तनामे की सत्यता का प्रमाण तुम नहीं दे सकते, फलस्वरूप तुम्हें भयङ्कर कानून में फँसना पड़ेगा । कहते हुए हाकिम ने अपनी स्कीम दोनों के सम्मुख रखी । दोनों को स्कीम पसन्द आयी । न्यायाधीश ने तुरन्त हस्ताक्षरयुक्त एक लिखित बयान ले लिया और न्यायालय में आ बैठा ।

मजिस्ट्रेट के न्यायालय में प्रवेश करते ही, उस अपार जनसमुद्र की आँखें उसपर टिक गईं । सभी लोग फैसले की प्रतीक्षा में अधीर हो रहे थे । सबों के हृदय में कौतूहल छा रहा था । लोग बड़ी उत्सु-

कता से इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी बीच अर्दली ने मि० थम्बर और तीर्थराज का नाम पुकारा।

मि० थम्बर अपने अटर्नी के साथ तथा तीर्थराज ने सौदागर के साथ न्यायालय में प्रवेश किया। मुकदमा आरम्भ हुआ। मजिस्ट्रेट ने साहेब के अटर्नी से पूछा—

"आप शर्तनामे की सत्यता के लिये क्या प्रमाण उपस्थित करते हैं।"

अटर्नी—मैं मुद्दई के वकील की हैसियत से आपके सम्मुख यह एलान करता हूँ कि शर्तनामा पूर्ण सत्य है। इसमें किसी प्रकार का जाल नहीं किया गया है।

"क्या इसके अतिरिक्त और कोई लिखित प्रमाण देना चाहते हैं।"

"जी नहीं, हमारे साहेब व्यर्थ झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहते।"

"और कुछ कहना चाहते हैं?"

"जी हाँ!" अटर्नी ने कहा—

"कह सकते हो"

मजिस्ट्रेट की अनुमति पाकर अटर्नी ने कहा—इस समय तो यह मामला शर्तनामे की सत्यता और असत्यता पर नहीं है। इस समय तो काम न करने का अभियोग है। झगड़ा तो केवल काम न करने का ही है, परन्तु विपक्षी ने जिस अस्त्र का सहारा लिया है, उससे यह युद्ध कभी समाप्त नहीं हो सकता। हमारे साहेब शान्त प्रकृति के व्यक्ति हैं। वे किसीको जबरदस्ती कष्ट देना नहीं चाहते। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक तीर्थराज को मुक्त करने का वचन दिया है। न्यायाधीश के समक्ष हस्ताक्षरयुक्त अपना एक लिखित बयान उपस्थित किया है। अब आज से तीर्थराज पर शर्तनामे की बात लागू न होगी। वह अफ्रिका में एक फ्रीमैन की हैसियत से रह सकता है।

अटर्नी की बात सुन मजिस्ट्रेट प्रसन्न होकर बोला—ठीक है, अब मेरा काम बिलकुल सरल हो गया। मैं साहेब को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने हानि उठाकर भी अपने विपत्ती को मुक्त कर दिया। अब दूसरा मामला साहेब के मारने का है। विपत्ती ने स्वयं स्वीकार किया है कि उसने साहेब के ऊपर घूँसा चलाया है। इसलिये इस अभियोग में न्यायानुसार छः मास के कारागार का दण्ड दिया जाता है।

मजिस्ट्रेट के निर्णय के साथ ही सिपाहियों ने तीर्थराज के हाथ में हथकड़ी डाल दी और जेल की ओर ले चले। मजिस्ट्रेट का यह न्याय बहुतों को उपयुक्त तथा युक्तिसंगत नहीं जान पड़ा। लोग समझ गये कि मजिस्ट्रेट ने साहेब का मान रखने के लिये ही तीर्थराज को छः मास के कारागार का दण्ड दिया है। वास्तव में तीर्थराज निर्दोष है। इसमें सरासर पक्षपात हुआ है। परन्तु कुछ भारतीयों को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि तीर्थराज के शर्तनामे की अवधि टूट गयी। सभी ने एक स्वर से उसके धैर्य, उत्साह और वीरता की प्रशंसा की और अपने-अपने घर को प्रस्थान किया।

सारे डरबन में यह खबर बात की बात में फैल गई। सभी सोचने लगे—थम्बर तो बड़ा काइयाँ था—उसने स्वयं शर्तनामे को क्यों रद्द कर दिया? इसके भीतर कुछ रहस्य अवश्य है। बिना कारण थम्बर ऐसा नहीं कर सकता। थम्बर से बढ़कर निर्दयी और यहाँ दूसरे फार्म का साहेब नहीं है।

कुछ लोग यह सोचते रहे कि जब शर्तनामा नाजायज हो गया तब फिर मामला ही क्या रहा। घूँसेबाजी में साहेब भी सम्मिलित था—दोनों झगड़े थे—दोनों दण्ड के भागी थे—न्यायाधीश ने तीर्थराज को ही क्यों दण्ड दिया?

इसके अतिरिक्त कुछ भारतीय यह भी सोच रहे थे कि न्यायाधीश

ने ठीक न्याय किया है—उसने अपना कर्त्तव्य पालन किया है। अपनी बुद्धिमानी से उसने दोनों पक्षों को प्रसन्न रखा है—सारे शहर में यही चर्चा फैल रही थी। सायङ्काल होते-होते वहाँ के दैनिक पत्र में इस मुकदमे का पूरा विवरण निकला। दो ही चार दिन में इङ्गलैण्ड और भारत के समाचार पत्रों ने भी मोटे-मोटे शीर्षकों में इस भारतीय की शानदार विजय का पूर्ण विवरण प्रकाशित किया।

१६

तीर्थराज का विजय-सन्देश समूचे दक्षिण अफ्रिका में फैल गया—सभी एक स्वर से मि० थम्बर की कड़ी आलोचना करने लगे—भारतीयों ने उसके जघन्य पशुकर्मों की घोर निन्दा की—समाचार पत्रों ने भी उसे खूब लथेड़ा—परन्तु निर्लज्ज अपमान के घूँट को भी पी गया।

उन दिनों में भारत के समाचार पत्र भी दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों के लिये आन्दोलन मचा रहे थे—तीर्थराज के इस आत्मिक बल ने उन्हें और भी बल दिया। वास्तव में यह उन्हें एक अमोघ अस्त्र मिल गया। इसी के द्वारा वे वहाँ के जघन्य कृत्यों के दिग्दर्शन कराने में पूर्ण सफल हुए।

सिंहासन अपने मित्रों के साथ बैठा हुआ बङ्गवासी पढ़ रहा था—एकाएक उसकी दृष्टि तीसरे पृष्ठ के शीर्षक पर गई। मोटे-मोटे अक्षरों में स्पष्ट लिखा था—'एक भारतीय की दक्षिण अफ्रिका में अपूर्व विजय।'

इस आकर्षक शीर्षक ने सिंहासन के हृदय में कौतूहल उत्पन्न

कर दिया—वह और विषयों को छोड़ इसी को बड़े प्रेम से पढ़ने लगा।

समाचार को आद्योपान्त समाप्त कर वह अत्यन्त विस्मित हुआ—उसका हृदय उमड़ पड़ा—तीर्थराज की मनोहर मूर्ति उसके नेत्रों के सामने नाचने लगी।

मित्र मेरा जीवित है, यह जानकर सिंहासन प्रसन्नता में आत्म-विभोर हो गया। इस सुसंवाद ने उसके शरीर में स्फूर्ति भर दी। परन्तु साथ ही उसकी दुर्दशा का वर्णन पढ़ अधीर हो उठा। उसके कण्ठ भर आये। नेत्रों से अश्रुकण टपकने लगे।

सिंहासन विचारा मगनसिंह की धूर्तता को क्या जानता था? उसने तो सुना था कि तीर्थराज गाड़ी के धक्के से कट मरा। जिस महीने में तीर्थराज गया था, उसी महीने में मगनसिंह ने कलकत्ते से लौटकर रामयश को यह अशुभ संवाद सुनाया था। उसके मामा ने रोते-कलपते हुए कुछ द्रव्य व्यय कर उसका श्राद्ध भी कर दिया था। सिंहासन भी उसमें सम्मिलित हुआ था—उसने स्वयं अपनी आँखों से देखा था कि मगनसिंह ने रो रोकर गाँववालों को उसकी मृत्यु का दुखद सम्बाद सुनाया था।

सिंहासन के हृदय से विषाद जाता रहा। अब वह एकाएक रौद्र हो उठा—सहसा आँखें लाल हो गईं। मारे क्रोध के त्वचायें फड़कने लगीं—सिंहासन के इस भाव को देख उसके सभी साथी चकित हो पूछने लगे—सिंहासन तुम इस प्रकार पत्ते की तरह काँप क्यों रहे हो? क्या बात है?

"इस लेख के समाचार को पढ़कर।"

"इस लेख के समाचार से तुम्हारा क्या सम्बन्ध?" उसके एक निकटस्थ मित्र ने पूछा—

"इस लेख में मेरे एक मित्र की अपूर्व विजय का वृत्तान्त आया है।"

"तब तो तुम्हें अत्यन्त प्रसन्न होना चाहिये।"

"प्रसन्न तो अवश्य हूँ परन्तु एक विश्वासघाती पर अत्यन्त क्रोध आ रहा है।"

"विश्वासघाती...?"

"तुम लोग यह बात नहीं जानते कि वह मेरा बाल्यसखा था—एक नर-पिशाच ने उसके साथ ही नहीं वरन् उसके परिवार तथा हम लोगों के साथ विश्वासघात किया है। रामेश्वर ने आद्योपान्त वह समाचार पढ़कर लोगों को सुनाया। सभी आश्चर्यचकित हो बार-बार अखबार की ओर निहारने लगे।

तब तक उनमें से एक लड़का बोल उठा—भाई! तीर्थराज तो हमारा परम मित्र था—लड़कपन में हम दोनों एक ही पाठशाला में पढ़े थे—विपत्तिकाल में वह हमारे यहाँ आया था, परन्तु पिताजी ने उसे अपने यहाँ रखना उचित नहीं समझा, क्योंकि उस समय उसके गाँव में प्लेग फैला हुआ था—

सिंहासन—तब तुम्हारा कैसे परम मित्र था?

रघुबीर—भाई मैं क्या करता, लाचार था।

सिंहासन—रघुबीर, मित्रता इसे नहीं कहते। मित्रता कुछ दूसरी वस्तु है—वह विद्यार्थियों का खेल नहीं है—वह मित्र ही नहीं जो अपने मित्र के आड़े काम न आवे। मित्रता आत्मा का धन है—प्रेमी दो शरीर रहते हुए भी अभिन्न हैं—दोनों की आत्मा एक होनी चाहिये—सच्चा मित्र वही है जो विपत्ति में काम आवे। रण में—बन में, जहाँ जैसी आवश्यकता पड़े सहायता करे—रघुबीर! मित्र के साथ विश्वासघात करके तुम अब परम मित्र बनते हो!

सिंहासन की बातों से रघुबीर एकदम झेंप गया। झेंपता हुआ

बोला—भाई क्या करूँ? मैं पराधीन था। अपनी पराधीनता पर मुझे काफी क्लेश हुआ था।

"व्यर्थ की बातें न करो, मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि आत्मा को दबाया नहीं जा सकता—यदि तुम्हारी प्रबल इच्छा होती तो तुम्हारे पिता को उसे रखना ही पड़ता—यदि वे न रखते तो तुम्हें उचित था कि मित्र की किसी न किसी प्रकार से सहायता करते।

इसी बीच में रामेश्वर बोल उठा—भाई सिंहासन! मगनसिंह ने तो बड़ी दुष्टता की।

"क्या इससे भी और अधिक दुष्टता हो सकती है? मेरा मित्र असहाय था। नौकरी दिलाने के बहाने उसे ले गया था। यहाँ आकर खबर कर दिया कि मर गया। पाप कहीं छिपता है। एक न एक दिन उसका भंडाफोड़ अवश्य हो जाता है। रामेश्वर! मेरा मित्र तो विश्वास में ठगा गया। वह बिचारा क्या जानता था कि गाँव और घर वाले ही शत्रु बन जायेंगे।"

इसी प्रकार लोग बहुत देर तक तीर्थराज की बातें करते रहे—सभी मगन सिंह के कुकृत्य से क्षुब्ध हो रहे थे। स्कूल में जो सुनता था वही मगन सिंह को धिक्कारता था।

सिंहासन उसी दिन घर पहुँचा। उसके पहुँचते ही सारे डुमरी में हल्ला हो गया कि तीर्थराज अभी जीवित है। वह अपने गाँव से बुद्धू तेली को लेकर दूसरे ही दिन तीर्थराज के ननिहाल में जा पहुँचा। रामयश ने सिंहासन का उचित आदर सत्कार किया। तीर्थराज के साथ वह कई बार यहाँ आ चुका था और स्वयं भी कभी-कभी आता जाता रहता था—जलपान करने के बाद उसने रामयश को सब समाचार कह सुनाया और सत्यता की दृढ़ता के लिये बंगवासी पत्र उनके सामने रख दिया।

रामयश बंगवासी लेकर पढ़ने लगा। अभी दस पाँच ही लाइन

पढ़ा था कि चक्कर आ गया और वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। सिहासन ने उन्हें गोद में उठा लिया—बुद्धू उनके मुँह पर पानी का छींटा देने लगा।

थोड़ी देर में रामयश ने आँखें खोलीं। परन्तु वह आपे में न था। तीर्थराज जीवित है—कहाँ है? कहकर पागलों के समान प्रलाप करता हुआ सिहासन की गोद से उठ बैठा। उसकी स्त्री रो-रोकर जमीन-आसमान एक करने लगी।

रामयश के रोने चिल्लाने की आवाज सुन पड़ोस के सभी स्त्री पुरुष दौड़ आये—बात की बात में बिजली के समान यह समाचार गाँव में एक ओर से दूसरे छोर तक फैल गया—मगनसिंह कलकत्ते से आया हुआ था—तीर्थराज का समाचार सुन वह बहुत घबड़ाया। उसका हृदय धड़कने लगा—उसने सोचा अब मैं निश्चय ही मारा जाऊँगा—अतः मुक्ति के लिये घर से भागकर एक गन्ने के खेत में जा छिपा।

तीर्थराज की दुःखभरी कहानी सुनकर गाँव का गाँव विद्रोही हो उठा। सबसे पहले लोग उसके घर पर गये, परन्तु वहाँ उसका पता नहीं लगा। गोल बाँधकर चारों ओर ढूँढ़ने लगे—घर घर छान डाला। अन्त में खेतों की ओर निकले—एकाएक आलू के सींचे खेत में कलकतिया जूते का निशान देख सभी रुक गये। सबों को विश्वास हो गया कि मगन अवश्य इसी ओर आया है।

जूते का निशान देखते-देखते लोग गन्ने के मेड़ पर आये—लोगों को सन्देह हुआ। मगनसिंह अवश्य इसी गन्ने के खेत में छिपा है—सैकड़ों आदमियों ने खेत को घेर लिया और बाकी भीतर पैठकर ढूँढ़ने लगे। मगनसिंह को काटो तो खून नहीं। थोड़ी ही देर में पकड़ा लिया गया और बाँधकर रामयश के दरवाजे पर लाया गया।

मगनसिंह को देखते ही रामयश जल उठा और कुपित सिंह के

समान उसपर टूट पड़ा। उसका हाथ छोड़ना था कि सभी एकाएक टूट पड़े और लगे दनादन पीटने। लात-मुक्का, घूँसा-थप्पड़, जो जिसके मन में आया सड़ासड़ जमाता गया। दाँत पीस-पीसकर सभी उसकी मरम्मत करते गये, यहाँ तक कि वह पापी मूर्छित होकर वसुन्धरा के वक्ष पर लुढ़क पड़ा। गाँव वाले उसी अवस्था में उसे छोड़ घर लौट आये।

उस रोज दिन भर रामयश के घर पर ठसाठस भीड़ जमी रही—जो लोग दो वर्ष पहले तीर्थराज से बातें करना नहीं चाहते थे—आज उसके लिये रो रहे थे। जिन लोगों की आँखों में वह खटकता था, आज वे उसे देखने के लिये तरस रहे थे। जिन लोगों ने नाक-भौं सिकोड़ा था—उसका निरादर किया था, वही उसे बुलाने के लिये उत्सुक हो उठे।

सभी उसकी वीरता की प्रशंसा कर रहे थे—लोग एक स्वर से कह रहे थे कि धूर्त मगन ने तो उसे कहीं का न छोड़ा था। परन्तु वाह रे तीर्थराज! जेल जाने के लिये तैयार हो गया। लेकिन गुलामी को अंगीकार नहीं किया। भाई रामयश! उसे किसी प्रकार बुलाओ, जो कुछ खर्चा लगे हम लोगों से चन्दा कर लो। छः मास का ही तो दण्ड मिला है। बात की बात में चन्दा एकत्रित हो गया।

१७

आज एकाएक जर्मनी गरज उठा है। उसकी तैयारी और सैन्य-बल ने संसार को चकित कर दिया है। उसके हुँकार से दशों दिशायें काँप उठी हैं तथा बड़े-बड़े समृद्धशाली राज्य थर्रा गये हैं।

तीन महीने हुए योरप में जर्मन समर छिड़ गया था। उस समय इङ्गलैण्ड ने अपने साम्राज्य के प्रत्येक अङ्ग से अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सहायता की याचना की थी। यूनियन सरकार के प्रधान सचिव जेनरल स्मट्स ने भी प्रान्तीय सरकारों को कहा था कि आप लोग यथाशक्ति इस समय सरकार को मदद दें। भारी विपत्ति का सामना है। जहाँ तक हो सके सेना, अन्न और धन एकत्र करें।

उन्हीं दिनों भारत में महात्मा गाँधी, ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिये नवयुवकों को उत्साहित कर रहे थे, भारत के कोने-कोने में उन्होंने यह मन्त्र फूँक दिया था कि विपत्ति में भेद-भाव नहीं होना चाहिये। आप लोग ब्रिटेन की यथा-शक्ति सहायता करें। लोग धड़ाधड़ सेना में भर्ती हो रहे थे। कैदी भी उस समय इसी शर्त पर छोड़े जा रहे थे कि वे युद्ध में जाकर सरकार की सहायता करें।

ठीक भारत की ही तरह दक्षिण अफ्रिका का भी सहयोग मिला। वहाँ भी लोग सेना के लिये भर्ती किये जा रहे थे।

डरबन का मजिस्ट्रेट बड़े उच्च विचार का व्यक्ति था। अपने सौजन्य से इसने सबों के हृदय पर अधिकार जमा लिया था। सभी इसकी प्रशंसा करते थे। उसने अपने व्यक्तिगत प्रभाव से हजारों आदमियों को दो ही तीन दिन में फौज में भर्ती कर लिया। इसी उद्देश्य से एक दिन वह डरबन के कारागार में गया। कैदियों की एक सभा की।

मजिस्ट्रेट तीर्थराज से परिचित था—कोर्ट में उसकी निर्भीकता एवं प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुआ था। वह जनता था कि तीर्थराज यदि युद्ध में जाने के लिये तैयार हो जाय तो उसके साथ हजारों भारतीय तैयार हो जायेंगे। उसने तीर्थराज को बुलाया। प्रेमपूर्वक अपने निकट बिठाकर बोला—

"तीर्थराज! तुम्हारे जैसे नवयुवकों की कर्मभूमि रणक्षेत्र है—

तुम लोगों पर ही देश, जाति और साम्राज्य की नीव आधारित है। तुम्हें साम्राज्य की रक्षा में हाथ बटाना चाहिये। तुम्हारे देश के नेताओं ने भी एक स्वर से इस बात का समर्थन किया है—इस समय प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है कि वह साम्राज्य की स्वतन्त्रता नष्ट करनेवालों का यथाशक्ति सामना कर, साम्राज्य की रक्षा करे। साम्राज्य के रक्षित रहने पर ही तुम स्वरक्षित रह सकोगे। इस पुनीत कार्य्य से तुम्हारे देश का यश बढ़ेगा और तुम्हारी अक्षयकीति भविष्य के अतीताकाश में सदैव चमकती रहेगी। तीर्थराज! तुम होनहार युवक हो—मैंने तुम्हारे प्रतिभाशाली हृदय को देखा है। सरकार ने तुम्हें एक ही माह में मुक्त कर दिया है। तुम उसकी सहायता के लिये प्रस्तुत हो जाओ।

तीर्थराज भविष्य-निर्माण के लिये अपने को प्रस्तुत कर रहा था—सोच रहा था, क्या उसे इन गोरों का साथ देना चाहिये? अन्तर्हृदय को उत्तर मिला—अवश्य! महात्मा गांधी की घोषणा उसे इस युद्ध में झोंक देने के लिये प्रेरित कर रही थी।

मजिस्ट्रेट तीर्थराज की मुखाकृति से उसके हृदय की बातें भाँप गया। अपना प्रयास सफल होते देख मन ही मन प्रसन्न हो बोला—तीर्थराज! क्या सोच रहे हो?

"यही कि सरकार की सहायता करूँ या नहीं?"

"अवश्य करो। स्वयं सहायता करो, औरों को भी सहायता के लिये प्रोत्साहित करो।"

"करूँगा—अवश्य करूँगा।"

"अच्छा! (जेलर की तरफ देखकर) १ वर्ष से कम कारागार पाने वाले १०० भारतीय कैदियों को छोड़ दो—साथ ही १ वर्ष से अधिक दण्ड पाये हुए कैदियों को भी जो तीर्थराज के साथ सेना में भर्ती होना चाहें मुक्त कर सकते हो।

मजिस्ट्रेट—तीर्थराज ! तुम एक पृथक भारतीय बटालियन तैयार करो—ये १०० कैदी जो मुक्त हो रहे हैं, उनमें से जो भर्ती होना स्वीकार करें, उनका नाम नोट कर लो और इसके अतिरिक्त डरबन कारागार तथा शहर से जितने आदमी तुम्हारे द्वारा सेना में भर्ती हो सकें भर्ती करो—नित्य सायंकाल तुम मुझसे बराबर मिल लिया करो, इसके लिये मैं तुम्हें स्वीकृति देता हूँ। तुम निर्भीकतापूर्वक कार्य करो, मुझे आशा है कि तुम्हारा भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल होगा।

जेल से छूटते ही तीर्थराज सीधे सौदागर के यहाँ पहुँचा—एकाएक तीर्थराज को अवधि के पूर्व अपने यहाँ देख सौदागर आश्चर्य-चकित हो बड़े प्रेम से मिलने के लिये उठा। तीर्थराज अपने इस उपकारी को नहीं भूल सका था। स्वयं दौड़कर गले से लिपट गया—परस्पर मिलने के पश्चात् तीर्थराज ने अपनी मुक्ति की कहानी बताई।

"क्या तुमने भी अपना नाम लड़ाई में दे दिया है।"

"जी हाँ ! मजिस्ट्रेट ने तो मुझे एक पृथक ही भारतीय बटा-लियन तैयार करने की स्वीकृति दी है।"

"बड़ा अच्छा हुआ—मैं तुम्हारे सेना में भर्ती हो जाने से अत्यन्त प्रसन्न हूँ।"

"प्रसन्नता के लिये धन्यवाद, आपको ईश्वर चिरायुकरें—आपकी ही प्रेरणा से तो मैं आदमी बना हूँ।"

"मैं तो निमित्तमात्र हूँ, तुम वस्तुतः कर्मवीर हो, तुम्हारे उच्च विचारों ने ही तुम्हें उन्नति की ओर अग्रसर किया है। सदैव अपना विचार उच्च रखो। उच्च विचार ही जीवन के उत्थान के मूल-कारण हैं। तुम जहाँ रहोगे वहीं तुम्हें यश मिलेगा। तुम्हारे युद्ध में जाने से मातृभूमि का मुख उज्ज्वल होगा। तुम्हें केवल यूनियन सरकार

को ही नहीं, वरन् संसार को यह दिखा देना है कि भारत कूलियों का देश नहीं। वह वीरभूमि है—वीरगर्भा है। इसी के पवित्र वक्ष पर राम और कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ था। भीष्म और भीम की प्रचण्ड शक्तियों का विकास हुआ था। तुम समरभूमि में जाकर संसार को यह दिखला दो कि भारत, वृद्ध भारत वास्तव में अब भी विश्वगुरु है।

तुम्हारी आत्मा, तुम्हारे विचार, तुम्हारा व्यवहार प्रशंसनीय है। इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर मजिस्ट्रेट ने मि० थम्बर पर दबाव डालकर तुम्हें स्वतन्त्र किया था। तीर्थराज! यह स्वतन्त्रता तुम्हारी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं है, बल्कि यह भारत के आत्मा की स्वतन्त्रता है और इसका आदिकारण तुम्हारी शुद्धात्मा तथा अन्तःकरण के पवित्र वे विचार हैं, जिनके सम्मुख विपत्तियों को नतमस्तक होना पड़ा।

तीर्थ! तुम महासागर के पार जा रहे हो। याद रखना, प्रमाद-वश अपने स्वत्व के लोभ में फँसकर कभी सिद्धान्त से न गिरना—इष्ट पथ पर विपत्तियों को देख विचलित न होना—तुम वीर हो, शस्त्र ही तुम्हारा भूषण है और रणक्षेत्र ही तुम्हारी शैय्या है। तीर्थ! पेट पालना ही संसार का उद्देश्य नहीं। अपने लिये जीना कोई जीना नहीं। जीवित वही है जो दूसरों के लिये जीता है—अतः उपकार में शरीर को लगा दो—और उन अभिमानियों को यह दिखला दो—कि मद ही नाश का कारण है। देखो! साम्राज्य, सैन्य तथा वैभव के गर्व में फूले हुए—गर्विष्ट पतितों के चरणों पर लोट रहे हैं।

१८

आज सात सौ वर्ष की पुरानी सन्धि टूट गई। बेलजियम के विशाल दुर्ग की सुदृढ़ दीवारें चूर-चूर हो गईं। अभिमानी विलियम कैसर की मदोन्मत्तवाहिनी ने जघन्य नृशंषता का परिचय दिया। पशुबल के द्वारा विश्व पर विजय की लालसा रखनेवाले जर्मनों ने निरपराध बेलजियम को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। निःसन्देह उसके हृदय में तनिक दया नहीं आई। उसने उर्वरा, धन-धान्यपूर्ण उर्वि को वीरान बनाकर छोड़ा।

मर्माहत देश के दग्ध वक्ष पर विजय-दण्ड खड़ाकर, अब वह फ्रांस की ओर झुका। जर्मनी निर्भय था—निःशंक था, उसे अपने बल का अभिमान था, अपनी शक्ति पर गर्व था तथा सैनिक दल का अहंकार था। वह वीर-प्रसविनी फ्रांस की स्वर्गभूमि को मटिया-मेट करना चाहता था। वह योरप के स्वर्ग पर शासन करना चाहता था। इतना ही नहीं, स्वतन्त्र सिंहों को परतन्त्रता के व्यूह में आबद्ध कर अपने हृदय की अग्नि का शान्त करना चाहता था।

उसकी विश्व-विजयी-वाहिनी फ्रांस में फैल गई, फ्रांसिसी सैनिकों ने बड़ी वीरता से सामना किया। देश की रक्षा के लिये—जन्मदा को अत्याचारों से बचाने के हेतु अपने प्राणों की बाजी लगा दी।

फ्रांस ने शत्रु की प्रबल शक्ति से टक्कर ली। पूर्वजों के गौरव की रक्षा के लिये एक नहीं, सहस्रों सुपुत्रों को रणांगण की प्रज्ज्वलित ज्वाला में भस्मीभूत कर दिया। एक नहीं अनेकों युवकों की आहुति देकर रणचण्डिका की प्यास बुझाई, परन्तु गर्विष्ट शत्रुओं को

नहीं हटा सका। विजयोन्मत्त जर्मनी विजय पर विजय करता ही गया।

फ्रांस को पीछे हटते देख सारा योरप दहल उठा, बड़े-बड़े राष्ट्र भयभीत हो उठे। रूस, स्पेन, पुर्तगाल, ग्रीस और इटली काँप उठे। अस्ट्रिया, जो इस महासमर का आदि कारण था—जर्मनी की छत्र-छाया में रहकर जंगल में मंगल करने लगा।

पुरानी सन्धि के टूटते ही संसार के सभी राष्ट्र चिन्तित हो सोचने लगे—"अकारण बेलजियम को नष्ट करना स्वार्थान्धता के अतिरिक्त और क्या है। निःसन्देह जर्मनी ने अनुचित कार्य किया है। इसका शीघ्र प्रतिकार करना उचित है, अन्यथा उसके सैन्य-बल को रोकना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव हो जायगा।"

फलतः ब्रिटेन को भी रणांगण में कूदना पड़ा। अमेरिका ने भी इस अत्याचारपूर्ण कार्य की निन्दा की और निरपराधों की रक्षा के लिये फ्रांस की समरभूमि में उतर पड़ा। मित्र-शक्तियों को संगठित देख, रूस पूर्ण उत्साहित हो पूर्ववत् रणक्षेत्र में डटा रहा। स्पेन, पुर्तगाल भी यथासमय युद्ध में सम्मिलित हो गये।

धीरे-धीरे युद्ध ने भयंकर रूप धारण कर लिया। यह कलियुग का महाभारत था। यह योरप का नहीं, बल्कि संसार का युद्ध था। इसमें एक देश नहीं, बल्कि संसार के सभी राष्ट्र किसी न किसी रूप में सहयोग दे रहे थे। योरप के इतिहास में यह अद्वितीय समर था—

इस महासमर से भयानक नाश हुआ, सहस्रों आदमी कालकवलित हुए—अरबों का द्रव्य स्वाहा हो गया। कितने भूभाग उजाड़ और वीरान हो गये—

इसी संग्राम के लिये तीर्थराज तैयारी कर रहा था—एक ही माह में उसने अपने अध्यवसाय एवं व्यवहार-कुशलता के बल पर

५०० जवानों को अपने बटालियन में भर्ती कर लिया। मजिस्ट्रेट ने सैनिक-शिक्षा का प्रबन्ध करवा दिया।

तीर्थराज होनहार नवयुवक था—अंगरेज-शिक्षक को युद्धकला की शिक्षा उसे अधिक नहीं देनी पड़ती थी। एक दो बार ही में वह समझ लेता और कर दिखाता था—थोड़े ही दिनों में वह कुशल सैनिक बन गया। अब अपने साथियों को वह स्वयं सैनिक-शिक्षा देने लगा। उसकी प्रखर बुद्धि से मजिस्ट्रेट अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसे उन ५०० भारतीय सैनिकों का कैप्टन बना दिया।

अब तीर्थराज, पुराना असहाय तीर्थराज नहीं है, अब वह कैप्टन तीर्थराज है—इसी डरबन में एक समय कोई उसे एक चिल्लू पानी देनेवाला न था—आज पाँच सौ सैनिक उसके इशारे पर मर मिटने के तैयार हैं।

मि० थम्बर जिसने कभी उसे बेतों से पीटा था और ठोकरें लगाई थीं, आज वही इसकी करुणा का भिखारी हो रहा है और उससे हाथ मिलाने में अपना गौरव समझ रहा है।

आज तीर्थराज दल-बल सहित जर्मनी के विरुद्ध योरप के लिये प्रस्थान कर रहा है। डरबन से अदन, स्वेज होता हुआ उसका जहाज मार्सलीज जाकर रुकेगा। वहीं से ट्रेन द्वारा लिलीं होता हुआ जर्मनी का सामना करने के लिये पश्चिमी फ्रांस में वह उन सैनिकों के साथ डेरा डालेगा, जो पहले से शत्रुओं का सामना कर रहे हैं।

यथासमय उसके सैनिक अफ्रिका की तट-भूमि पर आये और जहाज पर चढ़ गये—डरबन वासियों ने बड़े समारोह के साथ उसे विदा किया—इसके पहले आज तक किसी की इतनी समारोहपूर्वक विदाई नहीं हुई थी—मि० थम्बर भी अपने अटर्नी के साथ डक पर मौजूद था—सभी एक स्वर से तीर्थराज की प्रशंसा कर रहे थे।

समय निकट था—तीर्थराज अपने सहयोगियों से मिलता हुआ सौदागर के पास आया। सौदागर का हृदय उमड़ा पड़ रहा था। उसने बड़े प्रेम से उसे हृदय से लगाया और कहा—खुशी के साथ जाओ, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो—और लो, यह एक वस्तु मैं तुम्हें भेंट करता हूँ—आज ही यह प्रकाशित हो सकी है। यह तुम्हारा ही जीवन-चरित्र है—और तुम्हीं को भेंट देता हूँ। समय-समय पर मुझे स्मरण करते रहना—मैं तुम्हारा शुभेच्छु हूँ—ईश्वर से सदैव तुम्हारी मङ्गल-कामना चाहता हूँ।

और उपस्थित लोगों से मिलता हुआ वह मजिस्ट्रेट के पास पहुंचा। मजिस्ट्रेट से अभी बातें कर ही रहा था कि मिस्टर थम्बर अपने अटर्नी के साथ आ धमका। बिना कुछ कहे ही तीर्थराज का हाथ, हाथ में ले अभिवादन करते हुए कहने लगा—आशा है मि० तीर्थराज, तुमने हमारे अपराधों को क्षमा कर दिया होगा।

तीर्थराज नम्रतापूर्वक बोला—तुम्हारा कोई दोष नहीं था मि० थम्बर! तुमने अपनी प्रकृति के अनुकूल कार्य किया था—तुम बाध्य थे, पूर्ण विवश थे। तुम्हारी तमोगुणी वृत्ति ने लाखों आत्माओं को रुलाया है। अब तुम्हें अपना सुधार कर लेना चाहिये।

अटर्नी बीच में कूद पड़ा। बोला—मि० तीर्थ, अब तो इसका पूर्ण सुधार हो गया है।

पहली घण्टी बजते ही तीर्थ साहेब से हाथ मिलाकर सबों को अभिवादन करता हुआ जहाज पर चढ़ गया। इसी बीच में दूसरी और तीसरी घंटी भी बज गई। जहाज ढक से दूर होने लगा। हजारों नागरिक उस समय तक खड़े रहे जब तक जहाज आँखों से दिखलाई पड़ता रहा। मि० थम्बर भी यह सोचता हुए लौट पड़ा कि निःसन्देह तीर्थराज दैवी पुरुष है।

१६

दिन का अवसान हो चुका था। भगवान भुवन भास्कर के प्राची जलधि में प्रविष्ट होते ही, दोनों सेनाओं ने संग्राम बन्द कर दिया। सभी अपने-अपने शिविर में लौट विश्राम करने लगे। परन्तु कोई भी शान्त और निर्भय न था। दोनों एक दूसरे के आक्रमण की आशंका से भयभीत हो रहे थे।

आधी रात होते ही सैनिक शिविर के निकट किसी के रोने का शब्द सुन पड़ा। आवाज से किसी रमणी का कंठ-स्वर बोध हो रहा था। जान पड़ता था कि कुछ उद्दण्ड सैनिक किसी रमणी को सता रहे हैं। शिविर के प्रत्येक सैनिक कान पर हाथ रखे, यह अत्याचारपूर्ण करुण-क्रन्दन सुन रहे थे। परन्तु बाहर निकलकर वस्तु-स्थिति को समझने का साहस कोई नहीं कर रहा था।

चौबीस नम्बर बटालियन के सैनिक से यह नहीं सुना गया। वह दीन दुखियों का सखा—इस आर्त्तनाद से द्रवित हो गया। बिना किसी से कुछ कहे किरिच और पिस्तौल लेकर, उस भयानक काली रात में अकेला ही शिविर से निकल पड़ा।

थोड़ी ही दूर बढ़कर उसने देखा, दस बारह शत्रु-सैनिक एक अबला को घसीटते हुए शत्रु शिविर की ओर लिये जा रहे हैं। वह मुक्ति के लिये प्राणपण से छटपटा रही थी, परन्तु दानवी शक्ति के आगे वह अशक्त होती जा रही थी।

रमणी की दुरावस्था देख सैनिक क्षुब्ध हो उठा। मारे क्रोध के उसका शरीर काँपने लगा। नेत्र चढ़ गये और नासिका से लंबी

ऊष्ण निःश्वासें निकलने लगीं। उसने कड़ककर कहा—कौन है? ठहरो!

सैनिक के कर्कश स्वर ने सबों को चौंका दिया। शत्रु सैनिक क्षणभर के लिये रुके, पर उसे अकेला देख बोल उठे—क्या है? कौन हो तुम?

बटालियन सैनिक ने पुनः तीव्र स्वर में कहा—मैं तुमसे पूछता हूँ, बताओ तुम लोग कौन हो—इस भयानक अर्धरात्रि में इस रमणी को इस प्रकार कहाँ लिये जा रहे हो?

शत्रु-सैनिकों में से एक ने चिल्लाकर कहा—तुम्हें इससे क्या प्रयोजन? तुम कौन हो? भाग जाओ। नहीं तो बन्दूक की एक गोली तुम्हारा काम समाप्त कर देगी।

यह बटालियन-सैनिक असाधारण नहीं था। वह शत्रुओं की संख्या अधिक देखकर भी नहीं घबड़ाया। पूर्ववत् दृढ़ता से बोला—कायरो! ईश्वर से डरो, एक निरपराध अबला के पीछे दस-दस हाथ धोकर पड़े हो, क्या यह कार्य उन देशभक्तों का है, जो देश के लिये, जान हथेली पर लेकर, रणक्षेत्र में जूझने आये हैं? डूब मरो! तुम्हें जीने का कोई अधिकार नहीं।

एकाएक सुन्दरी को छोड़, वे उसपर टूट पड़े। परन्तु सैनिक पहले से ही सतर्क था। उसने म्यान से चमकती हुई किरिच खींच ली और निर्भयतापूर्वक हाथ घुमाता हुआ शत्रुओं के मध्य धँस गया।

एक घंटे तक युवक शत्रुओं के प्रहारों को रोकता रहा। अन्ततः जर्मन सैनिक किरिच चलाते-चलाते थक गये और हाँफने लगे। युवक यह अच्छा अवसर देख, द्विगुणित उत्साह से चक्र के समान घूमता हुआ किरिच घुमाने लगा। उसके लपेट में कितने ही शत्रु घायल हो गये। युवक की इस वीरता से भयभीत हो, युवती को छोड़,

वे भाग खड़े हुए। युवक ने पिस्तौल से भागते हुए तीन सैनिकों को तो धराशायी कर ही दिया—

दुराचारियों के भाग जाने पर युवक ने सुन्दरी से पूछा—देवी आप कौन हैं ? ये दुष्ट लोग आपको क्यों लिये जा रहे थे ?

युवती अपने प्राणरक्षक की बातें सुन करुण शब्दों में बोली—मैं इस देश की एक स्वयंसेविका हूँ। युद्ध में आहतों की सेवा करना ही मेरा कार्य्य है। आज रात में ये सिपाही मेरे सेवाकेन्द्र पर धावा कर, मुझे यहाँ तक घसीट लाये थे।

"अब आपका क्या विचार है ?" युवक ने पूछा।

"अँधियारी रात है, मैं अपने स्थान पर नहीं जा सकती, यहाँ भी शत्रुओं के भय से नहीं ठहरा जा सकता है। यदि साथ चलकर मुझे फ्रांस सर्विस-होम में पहुँचा दें तो बड़ी कृपा होगी।" सैनिक तैयार हो गया। प्रातःकाल चार बजते-बजते दोनों सेवा-केन्द्र में पहुँच गये। उसके गेट पर एक पेट्रोमेक्स प्रकाश कर रहा था। सुन्दरी ने उस युवक के सुन्दर मुखमंडल को प्रकाश में देखा।

दोनों कुछ देर तक बातें करते रहे। पश्चात् सुन्दरी अभिवादन कर सेवाश्रम में चली गई और युवक शिविर में लौट आया।

२०

आज फ्रांस के वक्ष पर घमासान संग्राम हो रहा है, तोपों का गगनभेदी नाद दिशाओं को कम्पायमान कर रहा है। वीरों के वज्र समान हृदय भी दहल रहे हैं। असंख्य शस्त्रों की झङ्कारों से पृथ्वी और अम्बर एक हो रहा है।

दोनों सेनायें डटी हैं। सैनिक एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे हैं। दोनों पक्ष अपनी-अपनी विजय के लिये जी जान से लड़ रहे हैं। कोई पीछे नहीं हट रहा है। सेनायें इतनी निकट आ गई हैं कि शस्त्र चलाना भी कठिन हो गया है।

जर्मन सैनिकों ने खूब कमाल दिखाया। उसने अपने प्रबल प्रहारों से शत्रुओं को विचलित कर दिया। मित्र सेना घबड़ा उठी। वह पूर्णतः थक चुकी थी। उसके पैर उखड़ गये। मित्र सेना को पीछे हटते देख जर्मनों ने द्विगुणित वेग से प्रहार करना आरंभ किया।

आज प्राणों की बाजी लगी है। मित्र सेना पीछे हटती जा रही है। "भारतीय सैनिकों को जल्दी आगे करो।" सेनापति ने वज्र-घोष किया।

सेनापति की आज्ञा से कमाण्डर ने भारतीय सैनिकों को रणक्षेत्र में आगे कर दिया। भारतीयों ने उस दुर्द्धर्ष संग्राम में विकट युद्ध किया। जर्मनों ने इनका लोहा मान लिया और इनके अनवरत प्रहार से वे विचलित हो उठे।

भारतीयों का युद्ध-कौशल देख सभी गोरे दङ्ग रह गये। इन लोगों ने हजारों जर्मनों को बात की बात में पृथ्वी पर सुला दिया। तीन बजते-बजते जर्मन सेना में हाहाकार मच गया और वे भाग खड़े हुए।

विलियम कैसर का सेनापति बड़ा ही योग्य व्यक्ति था। वह युद्ध-विद्या के प्रत्येक अङ्ग को जानता था। उसने पहले से ही दो-तीन बटालियन सुरक्षित रख छोड़ी थी। अपनी सेना को संग्राम-भूमि से भागते देख, उसने तत्काल नई सेना को आगे झोंक दिया। अब क्या था, भागते हुए जर्मन सैनिकों के पैर जम गये।

भारतीय सैनिक भी कम युद्ध-कला-विशारद न थे। अपने पूर्वजों के गौरव की रक्षा के लिये—भारत का मुख उज्वल रहे इस भावना से प्रेरित हो उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा दी।

दोपहर से ही अफ्रिका का इण्डियन बटालियन आज बड़ा काम कर रहा है। उसके चौबीस नम्बर के सैनिक ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया है। वह जिस ओर झुक पड़ता है, मैदान साफ कर देता है।

इस वीर नवयुवक का जर्मन सैनिकों पर जैसे आतङ्क-सा छा गया। इसे देखते ही सभी भयभीत होकर भाग खड़े होते हैं। सन्ध्या-काल निकट समझ भारतीय बटालियन 'जय बजरङ्ग' की ध्वनि से दिशाओं को गुञ्जारित करती जर्मनों की सेना में पिल पड़ी।

भीषण संग्राम हुआ—रक्त से पृथ्वी रँग गई। फ्रांस की उर्वरा भूमि आज रक्त से लथपथ हो गई। सैनिकों के रुण्ड-मुण्डों से पृथ्वी पट गई—भारतीय बटालियन ने खूब मारकाट की—सर्वत्र हाहाकार मच गया—जर्मन सैनिक त्राहि-त्राहि करते हुए पूर्व दिशा की ओर भागे—आज समराङ्गणमें भारतीयों ने ब्रिटेन की ही नहीं बल्कि संसार की लाज रख ली।

२१

हमारे उपन्यास की नायिका कुमारी ऐलिस फ्रांस के एक धनकुबेर की कन्या थी—इसका पिता अद्वितीय प्रतिभाशाली तथा ऐश्वर्यवान व्यक्ति था—उसने अपने उत्साह से, अपने सौजन्य से एवं अपने सत्कर्म के द्वारा फ्रान्स की आत्माओं पर अपना अधिकार जमा लिया था।

कुमारी की माँ बाल्यकाल में ही मर चुकी थी। पिता ने इसका बड़े लाड़-प्यार से पालन किया था। यह वास्तव में अपने पिता की

एकमात्र दुलारी सन्तान थी। मि० चार्ल्स ने अपनी पुत्री को सुयोग्य बनाने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी—वे आजकल के पिताओं के समान ज्ञानहीन नहीं थे। वे जानते थे कि सन्तान उत्पन्न करना जितना सहज है, उसको योग्य बनाना उतना ही कठिन है।

कुछ बड़ी होनेपर कुमारी के पिता ने उसे पढ़ाने के लिये एक गुणवती उत्तम आचरण वाली वृद्धा स्त्री को रख लिया। वे बड़े अनुभवी थे। उन्होंने अपनी आँखों से कुशिक्षा के लोमहर्षण दृश्य देखे थे—वे बराबर कहा करते थे कि विषय-वासना से लदी हुई कामुक वारांगनायें दूसरों को क्या सिखला सकती हैं? जो स्वयं ही दलदल में फँसा है वह दूसरे का क्या उद्धार कर सकता है?

कुमारी बाल्यावस्था में घर पर ही शिक्षाध्ययन करती रही, उसकी वृद्धा शिक्षिका ने वास्तव में उसे देवी बना दिया। कुछ ही दिन में वह दैवी गुणों से अलंकृत हो गई।

कुमारी अब नौ वर्ष की हो गई—गृह-शिक्षा में योग्य देख उसके पिता ने उसे बालिका विद्यालय में भर्ती कर दिया—वे वर्तमान समय के अनुसार उसे स्वतन्त्र मोटर या किसी सवारी से अकेले कभी नहीं भेजा करते थे। बालिका के साथ उसकी वही वृद्धा शिक्षिका हर समय रहा करती थी। कभी उसे ऐसा अवसर ही नहीं दिया कि वह पथभ्रष्ट हो या अवगुणों का लक्ष्य बने।

एलिस के पिता ने अपने इस विस्तृत जीवन से शिक्षा प्राप्त किया था कि बालक स्वभाव से ही अनुकरणशील होते हैं—जो कुछ करते देखेंगे वही करने लग जायेंगे। उन्हें अपने मन का कभी न करने देना चाहिये। सदैव पूर्ण सतर्क रहने से ही वे सुधर सकते हैं। कभी चूको नहीं। यदि चूक गये तो समझ लो तुमने बालक का महान् अपकार किया है। जो माता-पिता बालकों का नियन्त्रण नहीं करते वे वास्तव में माता-पिता नहीं, बल्कि बालकों के शत्रु हैं।

कुमारी बुद्धिमती थी, बाल्यकाल से ही उसकी बुद्धि प्रखर थी—उसने थोड़े ही दिनों में प्रवेशिका परीक्षा पास कर ली और इसके उपरान्त डाक्टरी विद्या पढ़ने के लिये तत्पर हुई—कुमारी आधुनिक कुमारियों के समान न थी, उससे सभी प्रसन्न रहते थे। सभी उसकी प्रशंसा करते थे तथा उसकी मंगलकामना के इच्छुक थे।

एकाएक महासमर छिड़ गया—फ्रांस ही समरभूमि बनी। ऐसी स्थिति में ऐलिस के पिता मि० कार्ल्स कब चूक सकते थे—ऐसे संकट के समय यह स्वदेशभक्त तड़प उठा और तन मन धन देकर मातृभूमि के कष्टों को दूर करने के लिये आगे बढ़ा—जन्म-भूमि के प्रेम-उमङ्ग में आनन्द-विभोर हो उसने कुमारी से कहा—बेटी अब मैं जा रहा हूँ। तुम किसी बात की चिन्ता न करना। मेरे परीक्षा का समय यही है—देखो मुझे मातृ-भूमि बुला रही है।

बेटी! आज जननी जन्मभूमि पर विपत्ति के बादल घहरा रहे हैं। आज हमारी प्यारी वसुन्धरा अत्याचारियों के पैरों से कुचली जा रही है। आज मातामही शत्रुओं से पीड़ित हो रही है, इस समय हमारा कर्तव्य है, हमारा धर्म है कि हम उसे कष्टमुक्त करें। उसे शत्रुओं के हाथ में जाने से बचावें। जिसके अन्न जल से हम इतने बड़े हुए—जिसके रजकणों पर लोट-पोटकर पले, तथा जिसकी गोद में इतने दिनों तक सुखपूर्वक रहे, आज यदि उसके विपत्ति में हम सहायक न हों तो हमसे बढ़कर और कृतघ्न कौन होगा?

पुत्री! यह हाड़-मांस का पुतला क्षणभंगुर है—निश्चय ही यह नाशवान है—पृथ्वी पर आते ही वह शरीर तीन प्रकार के बोझों (ऋणों) से दब जाता है—पहला बोझ तो माता का है, दूसरा पिता का—और इन दोनों से भी बड़ा ऋण मातामही का है। आज उसी ऋण से उऋण होने के लिये मैं युद्धभूमि में जा रहा हूँ।

मैं जन्मदा की रक्षा के लिये उत्सुक हूँ, यदि इस समय चुप बैठ

रहूँ तो मुझसे बढ़कर पापी कौन होगा? वह मनुष्य ही क्या जिसमें स्वदेश प्रेम नहीं। वह हृदय ही क्या जिसमें स्वदेश के लिये मर मिटने की अमर भावना नहीं। जिसने जन्म लेकर मातृभूमि की सहायता नहीं की, वह पृथ्वी पर भार-स्वरूप है।

मेरे जाने से तुम उदास न होना। तुम स्वयं ही बुद्धिमती हो, मातृभूमि के महत्त्व को समझती हो। जननी जन्मभूमि के प्रेम को जानती हो—तुम्हारा भी यही कर्त्तव्य है। मेरी चिन्ता मत करना। आज से तुम वसुन्धरा के उद्धार की चिन्ता में लग जाओ। इस जीव का कोई भरोसा नहीं। यदि मैं मर भी जाऊँ तो तुम मेरे शोक में अपनी शक्तियों को नष्ट न करना, बल्कि वीर पुत्री के समान रणांगण में जाकर मातृभूमि के लिये आत्मोत्सर्ग करने वालों की सेवा करना।

कुमारी ध्यानपूर्वक पिता की बातें सुन रही थी। उसने कहा—पिताजी आप निर्भय होकर रणभूमि में जाइये, आपकी पुत्री कभी कायर नहीं हो सकती। जब कभी मातृभूमि को आवश्यकता होगी, स्त्रियों में सबसे आगे शत्रुओं का सामना करने के लिये मैं बढ़ूँगी। पिताजी! मैं जानती हूँ कि यह शरीर हमारा नहीं है, मातृभूमि की धरोहर है। मैं आज से ही अपना कार्य्य आरम्भ कर देती हूँ। चाहे आप सफल हों अथवा विफल कोई चिन्ता नहीं, कुमारी ऐलिस कभी पथभ्रष्ट न होगी, कभी मातृभूमि के विपत्तिकाल में सुख की कामना नहीं करेगी।

आज फ्रांस की भूमि झुलस रही है। आज उसका वक्ष निरपराधों के रक्त से सींचा जा रहा है—आज उसके सहस्रों पुत्र व्यर्थ बलिदान हो रहे हैं—यह जघन्य अत्याचार मैं कैसे सहूँगी! पिताजी! मैं इसका प्रतिशोध लूँगी।

२२

पिता रणक्षेत्र में काम आये—यह दुःखद संवाद कुमारी को भयभीत न कर सका। वह निर्बल हृदया नहीं थी—पिता की शिक्षा ने उसे दृढ़ बना दिया था। वह प्रतिष्ठा और गौरव को जानती थी। आधुनिक जगत की स्त्रियों की भाँति व्यर्थ प्रलापिका तथा संकुचित्त हृदया वह नहीं थी।

जन्मभूमि की रक्षा के लिये पिताजी ने शरीर त्याग किया है—मैं मातृ-पितृहीन हो गई—अब मेरा क्या कर्त्तव्य है? इस विशाल धन का सदुपयोग मैं कैसे करूँ? इत्यादि बातें उसके हृदय को मन्थन करने लगीं। अन्त में उसने यही निश्चय किया कि देशसेवा ही सर्वश्रेष्ठ साधन है—पिताजी इसी के लिये उत्सर्ग हुए, मैं भी क्यों न उनका अनुकरण करूँ?

कुमारी ने इसी वर्ष मेडिकल की अन्तिम परीक्षा दी थी—इस समय इसकी अवस्था बीस वर्ष से अधिक नहीं थी। उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट तथा सौन्दर्यपूर्ण था। ब्रह्मचर्य ने इस रमणी के ज्ञान और मन दोनों को सुन्दर बना दिया था। साथ ही इतना ओज उसके मुखमण्डल पर छिटक रहा था कि सहसा दुराचारियों की आँखें नहीं ठहर सकती थीं। कुमारी ने अपने देश की मानरक्षा के लिये अपनी सेवायें अर्पित कर दीं। उसने शीघ्र ही अपनी सहेलियों की एक अलग टोली बनाकर एक सेवाश्रम खोल दिया, जिसका उद्देश्य था युद्ध के आहतों की सेवा करना।

कुमारी ने इस सेवाश्रम का नाम फ्रांस सर्विस-होम रखा। सेवा-

श्रम के सञ्चालन के लिये पचासों डाक्टर, कम्पाउण्डर, नर्स तथा सैकड़ों नौकर भर्ती किये गये। कुमारी ने अस्पताल का पूरा चार्ज अपने ऊपर ले लिया। पेरिस के आसपास लिली के निकट, समर-भूमि से कुछ दूर पर इसकी शाखायें खोली गईं—कुमारी स्वयं घूम-घूम कर प्रत्येक स्थान का निरीक्षण करने लगी।

स्वयंसेविका दल की अध्यक्षा कुमारी एलिस बड़ी सावधानी से अपने दल का संरक्षण कर रही थी। इसके साहस और शौर्य्य को देख बड़े-बड़े योद्धा दाँतों तले अँगुली दबाने लगे। वह प्रत्येक आहतों के पास जाती—उनकी आवश्यकताओं को पूछती और उन्हें पूर्ण करने के उद्योग में लगी रहती थी।

कुमारी करुण-हृदया रमणी थी, पीड़ितों को देख उसका हृदय पिघल जाता था। इसकी मधुर वाणी घायल सैनिकों के दग्ध हृदय पर अमृत का काम करती थी। इसकी सेवा सच्ची सेवा थी। निश्चय ही इसने अपनी सेवा के द्वारा एक नहीं, लाखों प्राणियों को काल के मुँह से खींच लिया था।

आज दोपहर को रणक्षेत्र से घायलों की भरी हुई गाड़ी लिली स्टेशन पर आई। कुमारी डाक्टरों और नर्सों को लेकर प्लेटफार्म पर पहले से ही तैयार थी। ट्रेन के प्लेटफार्म पर रुकते ही सभी एकाएक दौड़ पड़े और आहतों को सावधानी से उतारने लगे—थोड़ी ही देर में सुन्दर प्लेटफार्म भयानक रण-स्थली के समान बोध होने लगा। देखते-ही-देखते वहाँ करुणामिश्रित वीभत्स वातावरण उपस्थित हो गया।

किसी का पैर कट गया है तो किसी का हाथ कटकर लटक रहा है—किसी का सिर फूट गया है तो किसी के पीठ से रक्त चू रहा है—किसी के पेट में गोली लगी है तो किसी की बाँह से गोली पार हो गई है—किसी की जाँघ से गोली निकल गई है तो किसी के

बगल में धँसी पड़ी है। कोई मूर्च्छित था तो कोई व्यथा से कराह रहा था। कोई अन्तिम साँस की प्रतीक्षा में व्यग्र था तो कोई चीत्कार कर रहा था।

थोड़ी ही देर में प्लेटफार्म का वातावरण अशान्त हो उठा—

स्वयंसेविकायें, डाक्टर तथा नर्सें बड़ी मुस्तैदी से काम कर रही थीं—कुमारी तत्परता से चारों ओर देखभाल कर रही थी। लोग घायलों को स्ट्रेचरों पर रख रखकर बड़ी सावधानी से सेवाश्रम में ले जा रहे थे—नर्सें और डाक्टर उन्हें पृथक-पृथक चारपाई पर लिटाकर उनकी मरहम पट्टी में व्यस्त थे—चार बजते-बजते सभी घायल सिपाही अस्पताल में पहुँचा दिये गये।

प्लेटफार्म के कार्य्य से निवृत हो कुमारी सीधे अस्पताल पहुँची, घायलों की स्थिति सन्तोषजनक देख वह अत्यन्त प्रसन्न हुई—इतने पर भी उस उदारमना रमणी को सन्तोष नहीं हुआ। वह एक ओर से घायलों के निकट जा-जाकर देखती हुई दूसरे छोर तक पहुँची।

सन्ध्या समय कुमारी अपने निवास पर गई। आज दिन भर उसे कठिन परिश्रम करना पड़ा था—वह थक-सी गई थी। वह चाहती थी कि दो घण्टे विश्राम कर ले, इसी बीच एक स्वयंसेविका ने सूचना दी कि घायलों की दूसरी गाड़ी ११ बजे रात को लिली स्टेशन पर पहुँचेगी।

कुमारी तुरन्त तैयार होकर अस्पताल पहुँची और डाक्टरों को दूसरी ट्रेन आने की सूचना दी—घायलों की गाड़ी ठीक ११ बजे लिली स्टेशन पर पहुँच जायगी। जहाँ तक हो सके समय से पूर्व ही स्टेशन पर पहुँच जाना होगा। मैं भी ठीक समय पर उपस्थित हो जाऊँगी।

बीसों डाक्टर, सैकड़ों स्वयंसेविकाओं के साथ दस ही बजे स्टेशन पर पहुँच गये। ठीक ११ बजे गाड़ी आई। प्लेटफार्म पर पहुँचते ही

वही दोपहर वाला दृश्य उपस्थित हो गया। निस्तब्ध निशीथ, आहतों के आर्तनाद से अशान्त हो उठा—

रात्रि बड़ी भयानक बोध होने लगी। उस काली रात में प्लेटफार्म एकाएक रौरव सा जान पड़ने लगा—सचमुच वहाँ के आहतों की यंत्रणा किसी प्रकार रौरव से कम न थी—

"इसे अलग रखो, इसका बचना असम्भव है।" रात्रि के अंधकार में सर्जन ने गर्जना की—

"क्या साँस भी बन्द है? ·हृदय-स्थली पर हाथ रखकर देखा। यह बच जायगा।" कुमारी ने सर्जन से कहा—

"पर, कैसे आपने यह निश्चय कर लिया?"

"इसके हृदय की गति ठीक है—सांघातिक चोट लगने के कारण यह अपनी चेतना खो बैठा है।"

इसी प्रकार उस अन्धकार रात्रि में घायलों को रातोरात अस्पताल पहुँचा दिया गया—दूसरे दिन दस बजते बजते सभी घायलों की मरहम पट्टी हो गई। कुमारी गश्त के लिये दोपहर को निकली। सभी घायलों में ५७७ ऐसे थे जिनकी अन्तिम साँस चल रही थी। उनमें एक वह भी था, जिसे कुमारी ने प्लेटफार्म पर बच जाने का आश्वासन दिया था।

कुमारी ने सबों को देखा—भलीभाँति परीक्षा की—जब उनमें जीवन का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ा, तो लाचार हो कुमारी ने उन्हें हटा देने की अनुमति दे दी। अन्त में उस घायल अचेत सैनिक के पास गई।

कुमारी बहुत देर तक उसकी परीक्षा करती रही—थोड़ी देर के बाद वह एकाएक प्रसन्न हो उठी। स्वतः बोल उठी—अभी शरीर में जान है—यह बच सकता है। उसने तुरन्त डाक्टरों को

बुलाकर पूछा, इसकी मरहम पट्टी क्यों नहीं हुई ? इसकी नाड़ी और हृदय गति से स्पष्ट है कि यह ठीक हो सकता है।

"इसको कहाँ चोट लगी है, इसका कोई चिह्न या निशान नहीं दिखलाई पड़ता।"

डाक्टरों की बातें सुन, कुछ काल तक वह चिरमग्न स्थिर बैठी रही। एकाएक वह अपने स्थान से उठी। इंजेक्शन बाक्स मँगवाया। एक इंजेक्शन लगाया। तत्काल ही उसके शरीर का दर्द कुछ कम होता दीख पड़ा।

इन्जेक्शन देने के पश्चात् कुमारी उसे एक्सरे रूम में ले गई। विद्युत्-लट्टुओं के तीव्र प्रकाश में उसने इस सैनिक के सुगठित सुन्दर शरीर को देखा—तुरंत ही शरीर का रोग प्रत्यक्ष हो गया। उसकी पीठ की रीढ़ में दो बुलेट घुसे हुए थे। कुमारी ने तत्काल सावधानी से बुलेट निकाल दिये।

बुलेट निकल जाने पर भी सिपाही को चेतना न आई। कुमारी ने घाव की मरहम पट्टी कर दूसरे इन्जेक्शन का प्रयोग किया। थोड़ी ही देर में सैनिक धीरे से कराह उठा। कुमारी आश्वस्त हुई।

दोपहर होते-होते रणक्षेत्र से फिर घायलों की गाड़ी आई। कुमारी अपने सेवाश्रम के कर्मचारियों के साथ वहाँ जा पहुँची। यद्यपि वह कार्य-व्यस्त थी—तथापि उसका ध्यान उस सैनिक पर ही केन्द्रित था। उसको जीवित देखने की कुमारी को बड़ी ही उत्कंठा थी।

धीरे-धीरे दिन भी समाप्त हो गया, परन्तु सैनिक कुछ नहीं बोला। कुछ देर से उसका कराहना भी कम होने लगा था। यह देख कुमारी चिंतित हो विचारने लगी, क्या यह नहीं बचेगा ? इसका कराहना क्यों कम हो रहा है ? क्या इसकी शक्ति क्षीण हो रही है ? अथवा यह कठिन पीड़ा से मुक्त हो रहा है ? कुछ समझ में नहीं

आता। इतनी कड़ी दवा देने पर भी इसकी पीड़ा नहीं मिटी, आश्चर्य है।

क्या इसके शरीर में बुलेटों का विष तो नहीं फैल गया। नहीं यह भी संभव नहीं हो सकता, क्योंकि बुलेटों के विष फैल जाने पर कोइ इतनी देर तक नहीं ठहर सकता। उसका शरीर विकृत हो जाता, चेहरे का रंग काला पड़ जाता तथा कान्ति जाती रहती—परन्तु यह सब इसे कुछ नहीं हुआ है। उसकी कान्ति से ही कुमारी के हृदय में आशा का संचार हुआ था और अब भी कुमारी को यही आशा थी। वह बार-बार घूम फिरकर आती और इस सैनिक को देख लिया करती थी। उसे भरोसा हो गया था कि रात पार कर ले जाने पर, संभव है यह बच जायगा। थोड़ी देर के बाद कुमारी ने सबों की ड्यूटी बाँट कर, स्वयं अपने क्वार्टर में चली गई।

कुमारी वहाँ भी नहीं रुक सकी। उसका हृदय धड़कने लगा। बार-बार उसका मन उद्वेलित हो उठता। वह स्वयमेव बड़बड़ा उठती—वह सैनिक बचेगा या नहीं?

पुनः तत्काल अन्तर्हृदय से आवाज उठती—काल पर मेरा अधिकार नहीं, निकलते हुए प्राण को मैं रोक नहीं सकती। हाँ! सेवा सुश्रूषा में किसी प्रकार की न्यूनता न होने दूँगी।

ईश्वरीय-प्रदत्त ममता, दया और मातृभाव को क्या कोई छीन सका है? डाक्टरों ने जिसे आयोग्य समझ कर अलग कर दिया था, उस आहत के मर्म को इसी स्त्री हृदय ने परखा था। कुमारी बहुत रात तक सैनिक के बारे में सोचती रही। आज उसे नींद नहीं आ रही थी।

कुमारी से न रहा गया, वह तुरन्त अस्पताल की ओर चल पड़ी। चारो ओर सन्नाटा था, सर्वत्र निस्तब्धता छाई हुई थी, पहरा देने वाली स्वयंसेविकायें अपने-अपने स्थानों पर सतर्क बैठी थीं। इस

निस्तब्ध निशीथ में कभी-कभी किसी के कराहने की धीमी आवाज प्रतिध्वनित हो उठती थी। कुमारी ने एक स्वयंसेविका से पूछा—१५ नम्बर का रोगी कैसा है?

"अभी तक वह कराह रहा है।"

कुमारी उसके पास गई, परन्तु उसे कुछ विशेषता न जान पड़ी। कराहने में कुछ विशेष अन्तर न था। एक स्वयंसेविका को खूब सतर्कतापूर्वक सैनिक की देखभाल करने और जब भी वह बोले अथवा आँख खोले तो शीघ्र खबर देने का आदेश दे, वह चली गयी। कुमारी नहीं जानती थी कि वह कौन है? फिर भी उसकी अन्तरात्मा उपकार का बदला चुका रही थी।

२३

एक तो कुमारी अतिशय परिश्रम के कारण थकी थी ही, दूसरे इस नवयुवक की स्मृति ने उसे और व्यग्र बना दिया। अस्पताल से वह सीधे क्वार्टर में गई। आकर बिस्तर पर लेट रही, परन्तु नींद जैसे हवा हो गयी थी। घण्टों तक करवटें बदलती रही। थक-थका-कर उठ बैठी। अपनी प्राइवेट लाइब्रेरी से एक पुस्तक निकाल पढ़ने लगी परन्तु परिणाम कुछ न निकला।

घबराहट बढ़ती देख वह बीसेल के गीता का अनुवाद पढ़ने लगी। वह पहले कभी रोमा रोलाँ के पुस्तक में यह पढ़ चुकी थी कि मन उद्विग्न होने पर गीता का पाठ करना चाहिये। कुमारी कभी-कभी गीता अध्ययन भी किया करती थी। डाक्टर जोशी ने उसे संस्कृत का ज्ञान करा दिया था। मेडिकल कॉलेज में पढ़ते समय

डाक्टर जोशी के द्वारा उसे बहुत सी भारत की धार्मिक बातें ज्ञात हो गई थीं। इस समय यद्यपि कुमारी गीता का मनन कर रही थी—परन्तु अन्तर्नेत्र उस भारतीय सैनिक पर स्थिर थे।

कुमारी का हृदय-स्पदन बढ़ चला। श्वास में तीव्रता आ गयी। अब वह सैनिक उसकी दृष्टि में सैनिक नहीं, असाधारण दृष्टिगोचर होने लगा। अकस्मात् स्वयंसेविका ने कमरे में प्रवेश कर सूचना दी कि पन्द्रह नम्बर के रोगी की आँखें खुल गई हैं।

इस सुसंवाद से कुमारी का हृदय बांसों उछल पड़ा—निश्चय ही उसके हर्ष का ठिकाना न रहा। उसे अब आशा हो गई कि उसकी चिकित्सा सफल होगी। वह सत्वर गति से उठी। अस्पताल पहुँचकर सैनिक की मुखाकृति देखी। आशा झलक पड़ी आँखों में। मन ही मन प्रसन्न होती हुई सैनिक से बोली—

"कहो ! तुम्हारी तबीयत कैसी है ?"

"अब तो अच्छी है, पर पीड़ा अधिक है।"

"बातचीत करने में कोई कष्ट तो नहीं होता।"

"पीड़ा के कारण मुझसे बोला नहीं जाता।"

"कहाँ-कहाँ पीड़ा जान पड़ती है ?"

"पीड़ा तो सर्वत्र है—परन्तु पीठ में अधिक है।"

"कोई बात नहीं, सब ठीक हो जायगा। अधिक बात-चीत न करें। भोर तक आपका दर्द जाता रहेगा।"

सैनिक और कुमारी दोनों एक दूसरे को कौतूहलपूर्ण नेत्रों से देख रहे थे। कुमारी के मन में रह-रहकर यह भाव उदय हो रहा था कि इसे कहीं देखा है।

× × × ×

"इसे मैंने कहीं देखा है।" उसने बहुत कुछ सोचने विचारने की चेष्टा की, परन्तु ध्यान में कुछ नहीं आया। युवक के नेत्र मूँद लेते ही

वह अस्पताल से उठी और सीधे अपने क्वार्टर में जाकर बिस्तर पर लेट गई।

चारपाई पर पड़े-पड़े वह विचारों में बहने लगी—डाक्टरों ने इसे छोड़ दिया था। यदि उसका उचित उपचार न किया जाता तो निश्चय ही यह सुन्दर पुष्प अकाल में ही मुरझा जाता।

कैसा सुन्दर युवक है—आँखों में कितनी भावुकता है—हृदय कितना विशाल है कि दूसरों के उपकार के लिये अपने संकट को नगण्य समझा।

यह हमारा देश है—इसके लिये मरना-जीना हमें चाहिये—इसकी रक्षा का ध्यान हमें करना चाहिये। इस नरमेध-कुण्ड में व्यर्थ झुलसने के लिये यह क्यों कूद पड़ा?

यह योरप का युद्ध है—इसमें योरप के राष्ट्रों को सम्मिलित होना चाहिये—इसे हजारों कोस से आने की क्या आवश्यकता थी?

कौन जानता है—फ्रांस जीतेगा या जर्मनी। चाहे कोई जीते परन्तु उन माताओं की गोद जो खाली हो जायगी, उन स्त्रियों के भाल-सिंदूर जो धुल जायँगे—हाय! वह क्षति कहाँ से पूर्ण होगी? कौन उसे पूरा करेगा? फ्रांस या जर्मनी।

सभी उन्मत्त हो गये हैं, कोई इसके विरुद्ध आवाज नहीं उठा रहा है—सभी शिखंडी के समान मूक और परतंत्र होकर यह अनर्थ कौतुक देख रहे हैं। विजय और पराजय! इन्हीं दो शब्दों ने लोगों को इस जघन्य कर्म के सत्यानाशी चक्र में डाल रखा है। कुमारी इन्हीं विचारों में ऊभ-चूभ होती हुई ब्राह्म-मुहूर्त में सो गई।

२४

दिन चढ़ गया है परन्तु कुमारी अभी तक अस्पताल में नहीं आई, यह देखकर एक उसकी सहचरी दौड़ी हुई उसके क्वार्टर में आई। वह अभी भी सो रही थी—उसने द्वार खटखटाया।

खटखट की आवाज ने उसकी निद्रा भङ्ग कर दी। उठकर उसने दरवाजा खोला। सहचरी को भीतर आने का संकेत किया। सहचरी को घबड़ाया देख उससे पूछा—क्या बात है?

"घायलों की गाड़ी आ रही है, शीघ्र चलिये।" उसने कहा।

रात भर जागने के कारण वह आज सुस्त थी, फिर भी तुरन्त तैयार हो, स्टेशन जा पहुँची। गाड़ी से आये हुये घायलों का प्रबन्ध करने लगी। सभी घायलों के आ जाने पर वह स्वयं भी अस्पताल लौट आई। एक डाक्टर को लेकर पन्द्रह नम्बर के रोगी को देखने के लिये कमरे में प्रविष्ट हुई।

पन्द्रह नम्बर का रोगी अब अच्छा था—वह मजे में तकिये के सहारे लेटा हुआ था—कुमारी को देखते ही वह उठकर बैठ जाने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु कुमारी ने उसे ऐसा करने से मना किया। स्वयं उसके बगल में चारपाई पर बैठ गयी और अपने हाथों से उसकी पट्टी खोल, घावों को धोने लगी।

उचित उपचार हो जाने के पश्चात् कुमारी ने पूछा—"तुम्हारे शरीर की पीड़ा अब कैसी है?"

"अब तो ठीक है।"

"बोलने में कोई कष्ट तो नहीं होता।"

"नहीं! परन्तु शरीर शून्य-सा जान पड़ता है।"

"हाँ! ऐसा तो होगा ही, क्योंकि दर्द एकाएक उतरा है। और किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं?"

"जी नहीं!"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"तीर्थराज।"

"क्या तुम्हारी जन्मभूमि भारतवर्ष है?"

"जी हाँ!"

"तुम कहाँ भर्ती हुये थे?"

"मैं दक्षिण अफ्रिका से भर्ती होकर आया हूँ।"

"दक्षिण अफ्रीका से, यह कैसे?" आश्चर्यान्वित होकर उसने पूछा।

"समय के कठिन प्रवाह ने भारत से नेटाल पहुँचा दिया और वहीं से यहाँ आ पहुँचा हूँ।"

"क्या सोलजर-सर्विस के पहले कोई दूसरा काम करते थे?"

"जी हाँ!"

"उस नौकरी को छोड़कर क्यों इस रणाग्नि में अपनी आहुति देने आये?"

"उसकी बड़ी विचित्र कथा है, इस समय उसका वर्णन उचित न होगा।"

"क्यों? क्या बात है?"

"वह एक दुःखभरी करुण कहानी है।"

"मैं उसे सुनना चाहती हूँ।"

"आप उस करुण कहानी को सुनकर क्या करेंगी? उससे आप का न कोई उपकार होगा और न हीं आपको सुख मिलेगा?"

"सभी बातों में उपकार और सुख की अपेक्षा नहीं की जाती तीर्थराज !"

"परन्तु मेरी कहानी नीरस और स्वार्थपूर्ण है।"

"संसार स्वार्थ का क्रीड़ाक्षेत्र है, यह मैं जानती हूँ।"

"परन्तु आपके परिश्रम से हजारों और लाखों घायल स्वस्थ हो गये ? यह कितना बड़ा स्वार्थ-त्याग है ?"

"हमलोगों की सेवा निस्वार्थ नहीं है—इसमें वह स्वार्थ छिपा है जिसे वही समझ सकता है जिसपर ऐसा दुःख पड़ा हो। आपलोग धन्यवाद के पात्र हैं कि स्वदेश का किसी प्रकार का स्वार्थ न होते हुए भी, इस युद्ध में दूसरों की भलाई के लिये अपने आपको झोंक दिया है।"

"आपकी बातों की सत्यता को चुनौती देने की धृष्टता मैं नहीं कर सकता, पर इतना अवश्य कहूँगा कि हमलोग भी एक महान स्वार्थवश ही यहाँ आये हैं। साथ ही मनुष्य होने के नाते, हमारा धर्म हो जाता है अन्याय का प्रतिकार करना। मान लीजिये यह विपत्ति कल हमपर घहरा पड़े, तो क्या आप लोगों से वह आशा न की जायगी, जो इस समय आपलोगों ने दूसरों से की है।"

कुमारी तीर्थराज के वाक्चातुर्य्य पर मुग्ध हो गयी। वह समझती थी कि सैनिक एक अनपढ़ सिपाही होगा—परन्तु उसकी बातचीत से जान गई कि यह एक पढ़ा-लिखा चतुर युवक है। वाक् चातुरी के साथ-साथ उसके रूप ने भी कुमारी के हृदय में उथल-पुथल मचा दी। उसके मुखमण्डल की श्री चमक उठी।

बहुत देर होते देख, कुमारी एकाएक उठी और अस्पताल का निरीक्षण करने चली गई। दोपहर होते-होते सब कार्य्य से निवृत्त होकर अपने क्वार्टर में आई, और स्नानादि से निवृत हो भोजन के लिये बैठ गई। आज कुमारी बड़ी प्रसन्न थी। उसने बहुत कुछ अपने

हृदय की बातें सैनिक से की थीं–उसकी आँखों के आगे वही सुन्दर मूर्ति थी। उसके हृदय में उसी की मनोहर झाँकी थी—मन उसका उसी के पास था।

भोजन करते-करते कुमारी ने सोचा–आज मैंने बड़ी गलती की। उस सैनिक से मुझे इतना अधिक न बोलना चाहिये था। वह कल मूर्च्छित पड़ा था—कुछ भी बोल नहीं सकता था—रातभर वेदना से बेसुध था—मैंने सब काम छोड़कर व्यर्थ उसे हैरान किया। कहीं ऐसा न हो कि उसका रोग बढ़ जाय। मैं दो घण्टे तक उससे बातें करती रही। उसके बिस्तर के आस-पास वाले सैनिकों ने कहीं अन्यथा न समझ लिया हो ?

मुझे तो सभी से बोलना चाहिये। अच्छा अब सबसे बोला करूँगी। ऐसा करने से वहाँ अधिक देर तक ठहर भी सकूँगी और किसी के मन में सन्देह भी न होगा—परन्तु तुरन्त ही उसके मन में दूसरे भाव उदय होने लगे और वह विचारने लगी—सन्देह कैसा ? मुझपर लोग सन्देह क्यों करेंगे ? उस सैनिक से मेरा सम्बन्ध ही क्या ? वह तो स्वस्थ्य होकर चला जायगा। मुझे उसकी चिन्ता क्यों ?

कुमारी भोजन से निवृत्त हो, विश्राम की इच्छा से अपने कमरे में गई—परन्तु वहाँ भी इससे पिंड नहीं छुड़ा सकी। सैनिक की मनोहर मूर्ति उसके सामने नाच रही थी। वह बार-बार प्रयत्न करती थी कि वह उस विषय पर न सोचे—परन्तु विवश हो चुकी थी। हृदय का प्रेम-अंकुर अब अंकुर ही नहीं था। अब वह एक पौधे के रूप में लहलहा रहा था। धीरे-धीरे उसका हृदय पुनः उन्हीं विचारों से ओतप्रोत हो गया और वह चारपाई पर पड़े-पड़े विचारने लगी—

"आज मैंने उससे अफ्रीका-प्रवास के विषय में पूछा था। आग्रह करने पर भी उसने उत्तर नहीं दिया। निश्चय ही वह उसकी प्रेम-कहानी होगी। ओह ! इतनी सुंदरता और करुणापूर्ण ! निःसंदेह

किसी सुन्दरी ने कलि तोड़ने की इच्छा की होगी और इसने अस्वीकार कर दिया होगा। बस यही दर्दनाक कहानी हो सकती है। इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

नहीं! नहीं! मेरा तीर्थराज ऐसा नहीं है। वह किसी के प्रेम में आसक्त नहीं हुआ है। उसका प्रेम निर्दोष है। अरे! अरे! मैं यह क्या सोच रही हूँ? मुझसे उससे सम्बन्ध क्या—फिर मेरा तीर्थराज कैसा? वह तो सैनिक है।

जहाँ से आया है—वहीं चला जायगा। वाह रे मन! तू कहाँ दौड़ा जा रहा है। इस प्रकार उद्देश्यहीन दौड़ने में क्या सार है? ठहर!

२५

लुई की बातों ने आज मेरा समय ही नष्ट कर दिया। उस सैनिक को कितनी निराशा हुई होगी। हाय! मैं उससे बातें भी न कर सकी—यही सोचती हुई कुमारी अपने डेरे पर आई। ठीक इसी समय मेडसर्वेन्ट ने भोजन की सूचना दी। आज कुमारी अरुचिपूर्वक थोड़ा भोजन कर तुरन्त ही बिस्तर पर लेट गई।

इधर कई दिनों से उसकी अवस्था खराब होती जा रही है। उसके ध्यान में यह नहीं आ रहा है कि उसके इस गति का क्या कारण है? क्यों ऐसी अवस्था हो रही है उसकी? कभी-कभी उसके हृदय में यह भाव जागृत होता है कि क्या किसी अपरिचित के लिए अत्यधिक चिन्तित होना युक्तिसंगत है?—

तत्काल फिर सोचने लगती—अरे! वह अपरिचित क्यों?

इतना आगे बढ़ जाने पर भी अपरिचित ही है ? क्या अपरिचित इस प्रकार कभी हृदय पर अधिकार कर सकता है ? अपरिचित में कभी इतना साहस हो सकता है कि वह हृदयदुर्ग पर विजय कर ले—हृदयस्थल को भेदकर भीतर जा पैठे—कभी नहीं, यह अपरिचित का काम नहीं हो सकता।

कुछ क्षण रुककर फिर सोचने लगती—क्या उसके शरीर के घावों ने तो मुझे घायल नहीं कर दिया ? निश्चय ही मुझे जान पड़ता है कि मैं घायल हो चुकी हूँ, मेरा हृदय घायल हो गया है। तब क्या वह प्रत्युपकार करेगा। उसके घावों को मैंने अच्छा किया है, क्या वह मेरे घावों को अच्छा नहीं करेगा ? कर क्यों नहीं सकेगा ? उसका धर्म है कि वह मेरी चिकित्सा करे। ऐसा नहीं करने से वह भ्रष्ट हो जायगा। उसके विचार उच्च हैं, उससे मैं स्वप्न में भी यह आशा नहीं कर सकती कि वह कृतघ्न होगा।

परन्तु वह कैसे कर सकता है ? वह बिचारा तो एक सैनिक है—विदेशी है, दूर का राही है—मेरी चिकित्सा के लिये कैसे रुक सकता है ? मैं जानती हूँ कि मेरी औषधि उसके पास है—परन्तु वह परतन्त्र है। दूसरे के अधिकार में है। वहाँ से वह कैसे मुक्त हो सकता है ? यही सब सोचते-सोचते कुमारी का मस्तिष्क घूमने लगा। वह भ्रमित हो गई और लम्बी-लम्बी साँसें लेती हुई अपने कमरे के चारों ओर देखने लगी।

दस मिनट तक कुमारी की यही अवस्था रही। शान्त होने पर वह सोचने लगी—कहीं ऐसा न हो कि मैं पागल हो जाऊँ—मैं क्यों इसपर इतना मुग्ध हो रही हूँ ? क्या पेरिस जैसे सुन्दर नगर में कोई न रहा ? क्या फ्रांस की भूमि में ऐसा कोई रत्न नहीं रहा ?

क्या निर्जन बन नेटाल ही मेरे मन में भा गया। ओह ! यह क्या हुआ ? कहाँ मैं पेरिस की रहनेवाली सुन्दरी और कहाँ यह बन

का रहनेवाला पक्षी ! लेकिन...लेकिन वह पक्षी भी साधारण पक्षी नहीं है—आज तो वह कोकिल बनकर बसंत का सूचक बन गया है।

उस रोज रात भर कुमारी यही सोचती विचारती रही। उसे एक बार भी नींद नहीं आई। कुमारी को प्रतीत होने लगा कि निश्चय ही अब उसके जीवन का बसन्त आ रहा है। पलंग पर करवटें बदल बदलकर उसने सारी रात बिता डाली। सबेरा होते ही तैयार होकर रोगियों को देखने के लिये निकल पड़ी।

आज वह विशेष व्यग्र थी। आफिस का काम समाप्त कर सीधे तीर्थराज के पास पहुँची। आते ही पहले उसने उसकी नाड़ी देखी। आज तीर्थराज कुछ अधिक प्रसन्न था। उसकी निर्बलता भी दूर हो चुकी थी, केवल घाव भरना ही बाकी रह गया था। कुमारी ने सोचा कि पाँच-छ दिन में घाव भी अच्छे हो जायँगे। अतः वह तीर्थराज से बोली—घबड़ाने की कोई बात नहीं। आप शंका न करें। शीघ्र ही अच्छे हो जायँगे।

कुमारी अब तीर्थराज को तीर्थ कहकर पुकारने लगी थी और तीर्थराज उसे कुमारी कहने लगा था। कुमारी उसे भलीभाँति देखभाल कर वहीं बैठ गई—एकाएक उसके हृदय में तीर्थ की दर्दनाक कहानी सुनने की अभिलाषा बलवती हो उठी। अतः उसने पूछा—

"तीर्थ, तुमने अपनी कहानी नहीं सुनाई। उसे सुनने का मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है।"

"कुमारी, मैंने तुमसे प्रार्थना की थी, कि उसे न पूछो—मुझसे न कहलाओ।" दोनों 'आप' से 'तुम' पर उतर आये थे।

"क्यों तीर्थ ? तुम ऐसी बातें कहकर मुझे प्रेरित करते हो कि मैं तुमसे उसके लिये विशेष प्रार्थना करूँ।"

"नहीं कुमारी ऐसा न सोचो, मैं प्रार्थना करवाने का इच्छुक नहीं हूँ—तुम्हारा तो संकेत ही मेरे लिये पर्याप्त है। क्या सुन्दरियों को

किसी वस्तु के लिये प्रार्थना करनी पड़ती है? मैं तो देखता हूँ कि बिना इच्छा किये ही उनकी इच्छित वस्तुयें पास पहुँच जाया करती हैं। मैं एक अत्यन्त दरिद्र व्यक्ति हूँ, मेरा हृदय दरिद्र है तथा मेरी कथा भी दरिद्र ही है। मैं क्यों उन्हें व्यर्थ कहकर तुम्हारे कोमल हृदय पर आघात करूँ? निश्चय ही मेरी करुण कहानी से तुम खिन्न हो उठोगी। आज मैं तुम्हारा कृपापात्र हूँ। सम्भव है कथा सुनाने के बाद तुम्हारा घृणापात्र बन जाऊँ।"

"तीर्थ, मैं तो तुम्हें एक साधारण सैनिक समझती थी, परन्तु तुम तो बड़े दार्शनिक प्रतीत होते हो। आश्चर्य है, दार्शनिक होकर भी एक स्त्री-हृदय को नहीं पहचान सके।"

"निःसन्देह कुमारी! मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। दार्शनिक होना तो बड़ा ही कठिन है। अंग्रेजी तो केवल तुम लोगों से बातें करने के लिये ही सीख ली है, क्योंकि इसके बिना तुम लोगों की बातें कैसे समझ सकता? तुम्हारा यह भी कहना अनुचित नहीं है कि स्त्री-हृदय की पहचान नहीं है। स्त्री समाज में रहने का मुझे अभी अवसर ही नहीं मिला है। अतः सर्वथा अनजान हूँ।"

"इस प्रकार कहने-सुनने से पिण्ड नहीं छूट सकता। तुम्हें अपनी वह कहानी सुनानी ही पड़ेगी—तुमने सुना नहीं है कि जो दूसरों के घृणा का पात्र बनता है, वह स्त्री के लिये निःसन्देह प्रेमपात्र सिद्ध होता है।"

"कुमारी, मेरी दर्दनाक कहानी मेरी ही कहानी नहीं है, वरन् वह मेरे अभागे देश की करुण कहानी है।"

"तुम्हारा भारत मेरे अध्ययन का एक विशेष विषय है। तुम अपने को तथा उस पवित्र देश को इतना क्यों हीन समझते हो? यदि तुम्हारी आत्मकथा तुम्हारे देश की कहानी है तो तुमसे बढ़कर भाग्यशाली और कौन होगा? सचमुच तुम इतिहास के पात्र हो।

तुम्हारा नाम अमर रहेगा। तुम्हारी कीर्ति अतीत के उज्ज्वल आकाश-चन्द्रिका के समान चमकती रहेगी तथा भावी सन्तति तुम्हारा यशगान करेगी।"

"कुमारी, तुम यह क्या कह रही हो? बुद्धिमती तथा विदुषी होकर भी तुम यह क्यों भूल रही हो कि मैं एक साधारण सैनिक होकर इतिहास का पात्र कैसे बन सकता हूँ? न सेनानायक हूँ और न सेनाध्यक्ष। मुझे इतनी उँचाई पर न स्थान दो कि वहाँ से लुढ़क पड़ूँ।"

"तीर्थ! बुद्धि से विचारो। क्या बिना सैनिक के संग्राम हो सकता है? सैनिक ही लड़ते हैं—परन्तु नाम होता है सेनानायक का। सैनिक ही इतिहास का निर्माण करते हैं और उन्हीं की प्रशंसा भी होती है।"

"किन्तु मेरे कथन का आशय तुम नहीं समझ सकीं—मैंने कहा था कि मेरी कहानी देश की कहानी है, इतिहास की नहीं। इतिहास और कहानी में मैं भेद मानता हूँ।"

"तीर्थ, कहानी और इतिहास का भेद मैं जानती हूँ—इतिहास के अन्तर्गत देश की सारी कहानियाँ रहती हैं। इन दोनों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है—बिना कहानी के इतिहास बन ही नहीं सकता।"
कुमारी को बहुत देर हो गई थी। उसने तीर्थ के सुन्दर स्वरूप को एक बार आँखें भरकर देखा और यह कहती हुई चली गयी कि—
"नहीं कहते तो लो मैं जाती हूँ।"

२६

कुमारी को तीर्थराज से प्रेमपूर्वक बातें करते देख ब्लाङ्क और कांस्टेलो ईर्ष्याग्नि की प्रज्ज्वलित ज्वाला में भस्मीभूत होने लगे—उन्हें यह चिन्ता सताने लगी कि कुमारी हम लोगों से बातें क्यों नहीं करती ? क्या हमलोगों से तीर्थराज अधिक सुन्दर है ?

"मित्र ! मुझे कुमारी के व्यवहार में सन्देह जान पड़ता है।" ब्लाङ्क ने कहा।

"मित्र, मैं भी ऐसा ही समझता हूँ।"

"क्या कहूँ ? कुमारी की बातों से जान पड़ता है कि वह प्रेम में उन्मत्त हो गई है।"

"उसे कुछ दिखलाई थोड़े ही पड़ता है। वह एकदम आँखें मूँदकर प्रेम-समुद्र में गोते खा रही है।"

"अजी, अभी थोड़े ही दिन हुए हैं कि कालेज से निकली है—देखते नहीं हो, बिलकुल हवा में उड़ रही है।"

"क्या कहूँ मित्र ! गिरी भी तो एकदम खन्दक में।"

"हाँ ! हाँ ! देखो न ! इतने बड़े-बड़े फ्रेञ्च युवकों के रहते हुए, इसने एक काले-कलूटे गुलाम आदमी को पसन्द किया।"

"इसकी बुद्धि मारी गई है।"

"निःसन्देह ! उसके प्रेम का प्याला उबल पड़ा है।"

"भाई ! इस हिन्दुस्तानी पर मुझे तो बड़ा क्रोध आता है, कैसी-कैसी बातें करता है।"

"इसमें हिन्दुस्तानी का क्या दोष ? कुमारी स्वयं उससे बोलती है।"

"क्या हमलोग उससे बोलने योग्य नहीं हैं ? हमलोगों की तरफ तो वह झाँकती भी नहीं।"

"किसी प्रकार कुमारी को तीर्थराज की ओर से विमुख करने का उपाय करो।"

"हाँ, मेरा भी यही विचार है—अभी इन लोगों का प्रेम अंकुरित हुआ है—प्रेमसूत्र अभी कच्चे धागे के समान है—साधारण झटके में ही टूट जायगा।"

"ठीक है—देखने से मालूम होता है कि अभी इन लोगों के प्रेम की पहली सीढ़ी है—यदि उद्योग करें तो हमलोग बात की बात में इस प्रेम की सीढ़ी को नष्ट कर सकते हैं।"

"इन दोनों का सम्बन्धविच्छेद कर देना ही उत्तम है। कुमारी एकदम विपरीत कार्य कर रही है।"

"मेरी समझ से तो इस कार्य के लिये उस अमेरिकन को उभाड़ना चाहिये, जिससे आज कुमारी कह रही थी—घबड़ाओ नहीं एक ही सप्ताह में तुम पूर्ण स्वस्थ हो जाओगे।"

"उसे किस प्रकार मिलाओगे ?"

"लालच देकर। उसे कहा जायगा कि कुमारी अभी कुँआरी है, प्रेम की राह में भटक रही है, उससे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करो। साधारण प्रयत्न करने में ही हाथ लग जायगी।"

"इससे तुम्हारा क्या अभीष्ट सिद्ध होगा ? यदि अमेरिकन अपने कार्य में सफल हो गया, तब ?"

"इससे बहुत बड़ा लाभ है—उस काले के प्रेमपाश से तो बच जायगी।"

"भाई ब्लाङ्क ! तुम नहीं समझते—अरे, ये दोनों हमारे लिये

एक ही हैं। यहाँ काले और गोरे का भेद नहीं है—मेरे लिये तो भारतीय और अमेरिकन बराबर हैं। देखते नहीं हो, दोनों हमारी ही सहायता के लिये अपना-अपना घर-द्वार छोड़-छोड़कर हजारों कोस दूर आये हैं।"

"तब तुम्हें ईर्ष्या क्यों होती है ?"

"इसलिये कि देश की एक सुन्दरी विदेशी के साथ सम्बन्ध करना चाहती है। हमलोग फ्रांसिसी हैं। हममें तुममें कोई अन्तर नहीं। यदि कुमारी तुम्हें ही वरण कर ले, तो भी मुझे अपार आनन्द होगा।"

"ओहो ! मैं तुम्हारा आशय समझ गया। ठीक है, मैं भी यही चाहता हूँ कि कुमारी विदेशी के प्रेमजाल से मुक्त हो। हमलोग यहाँ के पुराने वासी हैं तथा यहीं रहेंगे भी, परन्तु वह भारतीय तथ अमेरिकन तो कुमारी को लेकर अपने देश को लौट जायेंगे।"

"निःसन्देह अमेरिकन से प्रेम कराने का प्रयत्न करना भी हमलोगों के लिये घातक ही होगा।"

"ऐसी स्थिति में क्या करना उचित है, क्या कोई ऐसी युक्ति है जिससे पौ बारह हो ?"

"हाँ ! ह क्यों नहीं ?"

"तो बताओ।"

"पहले कुमारी से बातचीत करने का मार्ग निकालो। अभी तो झाँकती तक नहीं। बिना पहले बातचीत किये तुम कुछ न कर सकोगे।"

"ठीक है। परन्तु उससे कहोगे क्या ?"

"कहेंगे क्या—हिन्दुस्तानी की खूब बुराई करेंगे, उसे ऐसी पट्टी पढ़ा देंगे कि उस काले से वह स्वयं ही रुष्ट हो जायगी।"

"इस काले के विरुद्ध में क्या कहोगे ?"

"एक दो नहीं सैकड़ों बातें। विदेशी परतन्त्र है, इसकी भाषा दूसरी है, यह असभ्य है, जङ्गली है, निर्धन और कुरूप है इत्यादि।"

"बहुत ठीक, खूब कहा, इतना सुनते ही निश्चय ही कुमारी उससे बोलना छोड़ देगी।"

"छोड़ेगी क्यों नहीं? सीधे लाठी मारे साँप नहीं मरता! जानते हो सैनिक-चाल से प्रेम नहीं किया जाता।"

"तब क्या? प्रेम के लिये कोई और चाल भी है।"

"एक नहीं सैकड़ों।"

"तब तो पूर्ण भ्रांति है—एक दो नहीं, एक दम सौ-सौ चालें!"

"हाँ! हाँ! सौ-सौ नहीं हजार-हजार चालें हैं।"

"उन हजारों का उपयोग कैसे किया जा सकता है?"

"अरे तुम तो निरे बुद्धू ही जान पड़ते हो। सुनो, सुन्दरियों का जिधर मन हो, उसी ओर की बातें करना—उनकी प्रशंसा से न चूकना—प्रत्येक बातों में उनके गुणों का वर्णन करते हुए उनकी सुन्दरता की उपमा देना इत्यादि। यही सब तो चाले हैं।"

"यार! तुम तो बहुत कुछ कह गये परन्तु ये बे-सिर पैर की बातें मैं कुछ भी न समझ सका।"

"समझोगे कैसे? प्रेम करना खेलवाड़ नहीं है बच्चू। तलवार के धार पर चलना है। प्रत्यक्ष अग्नि से खेलना है।"

२७

ब्लाङ्क और कांस्टेलो यह देखकर नहीं सह सके। रह-रह कर उन दोनों के हृदय जलने लगे। तीर्थराज और कुमारी का व्यवहार

इन्हें असह्य हो रहा था। दूसरे ही दिन जब कुमारी रोगियों को देखने के लिये आई और जब वह तीर्थराज के बिस्तरे के पास से आगे बढ़ ही रही थी कि अचानक कांस्टेलों ने पूछा—"सिस्टर ! हमलोगों की मुक्ति कब होगी ?"

"क्या कोई बन्धन में हैं ?"

"नहीं यह बात नहीं है। मेरा अभिप्राय छुट्टी से है।"

"हाँ मैं भी यही कहती हूँ। क्या आप घबड़ा गये हैं ?"

"हाँ सिस्टर, एक ही स्थान पर लेटे-लेटे तबीयत अवश्य घबड़ा जाती है। हमलोग सैनिक हैं, बिना दौड़ धूप किये हमलोगों के पेट का पानी नहीं पचता।"

"ठीक है, सैनिकों को अवश्य दौड़-धूप करना चाहिये। सिपाहियों में स्फूर्ति का होना अत्यावश्यक है।"

ब्लाङ्क—पर क्या करूँ, इस समय तो हमलोग पूर्ण आलसी हो गये हैं। बैठे-बैठे जीवन आलस्यमय हो रहा है। आपलोगों के आते-जाते रहने से हमलोगों का बड़ा उपकार होता है सिस्टर ! कम-से-कम मनोविनोद तो अवश्य ही हो जाता है।

कॉंस्टेलो की बातें सुन ब्लांक बोला—ठीक कहते हो भाई। यदि इस अस्पताल में ये स्वयंसेविकायें न रहतीं तो सभी रोगी सुरधाम पहुँच गये होते।

कांस्टेलो—हाँ भाई ! ठीक कहते हो।

"इसीलिये तो हमलोग घूम-घूम कर आपलोगों का मनोविनोद किया करती हैं। मनोविनोद भी एक प्रकार की सेवा और औषधि है। अब आपलोग घूमने फिरने के लिये बाहर जा सकते हैं। लेकिन मरहम पट्टी और हाजिरी के समय यहाँ रहना अनिवार्य है। जब आपलोग पूर्ण स्वस्थ हो जायँगे, तब निश्चय ही यहाँ से मुक्त कर दिये जायँगे, अभी घबड़ायें नहीं।"

कांस्टेलो—घबड़ायेंगे क्यों? हमलोग तो यहीं चार कदम पर के रहनेवाले हैं। यहाँ तो हजारों कोस से भी आगे के रहने वाले पड़े हैं।

ब्लाक—हाँ, ठीक है, देखते नहीं हमारे बगलवाला आदमी तो हजारों कोस की दूरी से आकर पड़ा है।"

"देखिये तो! बेचारे कितनी दूर से ये आये हुए हैं। ये तो वर्षों से जन्म-भूमि को छोड़े हुए बैठे हैं, परन्तु कितने प्रसन्न दिखलाई देते हैं।" कुमारी ने तीर्थराज की ओर संकेत करते हुये कहा—

"प्रसन्न तो हैं, परन्तु यह प्रसन्नता, प्रसन्नता नहीं कहीं जा सकती।"

"क्यों नहीं कही जा सकती?"

"क्योंकि—अच्छे होकर फिर तो जूझना ही है।"

"महासमर तो चल ही रहा है" काँस्टेलो ने कहा—

"इसकी क्या चिन्ता है? क्या आप लोग इसी से उदास हैं?" कुमारी ने व्यंग कसा—

"नहीं ऐसी बात नहीं है, फिर भी युद्ध के समय प्रसन्नता कैसी?"

"यही तो वीरों के लिये प्रसन्नता का समय है। सैनिक रणक्षेत्र में ही आनन्द मनाते हैं।"

कुमारी से अभी बातें हो ही रही थीं कि एकाएक तार आ पहुँचा—जर्मनी से सन्धि हो गई। महासमर बन्द हो गया। दोनों सेनायें पीछे हट गईं।

२८

आज वर्षों के पश्चात्, यह नरमेध किसी प्रकार राष्ट्रपति विलसन के उद्योग से रुका। संसार प्रसन्न हो उठा। फ्रांस में घर-घर प्रकाशदीप जलाये गये। आबाल-वृद्ध सभी आनन्द का राग अलापने लगे।

आज सेवाश्रम में बड़ा उत्सव है। डाक्टर और कम्पाउन्डर फूले नहीं समाते। नर्स और स्वयंसेविकायें प्रसन्नतापूर्वक घूम रही हैं। सभी चार वर्ष से लगातार पिस रहे थे। आज ही उन्हें यह शुभ अवसर मिला है।

इस सुसंवाद ने कुमारी के हृदय में भी प्रसन्नता उत्पन्न कर दी है। आज सवेरे ही, वह लोगों को बधाई देने के लिये निकली है। राष्ट्र के प्रधान-प्रधान पदाधिकारियों ने उसकी बधाई स्वीकार कर, उसके कार्य की सराहना की। उसकी सेवा, स्वार्थ त्याग तथा तत्परता ने सबों के हृदय पर धाक जमा ली थी।

कुमारी सायंकाल में यह सोचती हुई लौट रही थी कि आज इस आनन्द दिवस पर वह प्रियतम को क्या भेंट दे? उसके पास तो कोई ऐसी वस्तु नहीं, फिर भी इस महोत्सव पर उसे अवश्य कुछ देना चाहिये। इतने दिन बीत गये, परन्तु आज तक उसने अपना प्रेम प्रकट नहीं किया है, उसका प्रियतम इसे समझता है अथवा नहीं। उसका प्रेम सच्चा है, उसकी लगन निश्चल, मेरी धारणा अटल है। सच्चाई भी कहीं छिपती है? वह अवश्य इसे समझ गया होगा, वह बुद्धिमान है।

सुन्दरी घण्टों यही विचारती रही, अन्त में उसने निश्चय किया कि इस सुअवसर पर वह एक प्रीतिभोज देगी। ऐसा करने से उसे प्रियतम के प्रति प्रेम प्रकट करने का अवसर मिलेगा। विचार स्थिर करते ही कुमारी मेड सर्वेन्ट को निमन्त्रण पत्र देकर स्वयं प्रबन्ध करने में जुट गई।

इस प्रीति-भोज में बहुत लोग सम्मिलित नहीं किये गये थे। केवल सेवाश्रम के अफसर और कर्मचारी थे। इसके अतिरिक्त सेवाश्रम के घायल सैनिकों में तीर्थ, ब्लाङ्क और कॉस्टेलो का नाम था। यह प्रीतिभोज वास्तव में आपस का सहभोज था। अतः इसमें विशेष शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं पड़ी।

यथासमय सभी लोग आ गये। कुमारी ने धन्यवादपूर्वक सबों का स्वागत किया। सभी लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। भिन्न-भिन्न प्रकार की भोजन-सामग्रियाँ पहले से ही सजी-सजाई रखी थीं। कुमारी निरामिषभोजी थी। वह फल अन्न और दूध से अपना निर्वाह करती थी। आज भी उसी प्रकार के सभी सामान तैयार करवाये थे।

कुमारी एक मेज के निकट बैठ गई। तीर्थ, ब्लांक और कॉस्टेलो उसी के आस-पास बैठ गये। सबों के योग्य स्थान पर बैठ जाने के पश्चात् ब्लांक ने उठकर अभ्यागतों की ओर से कुमारी को धन्यवाद देते हुए उसने उसका स्वस्थ्यता के लिये ईश्वर से प्रार्थना की। पश्चात् सभी लोगों ने भोजन आरम्भ किया।

आज वर्षों के पश्चात् तीर्थ को देश के भोजन का दर्शन हुआ। वह अकचका गया। जब से वह योरप में आया था तब से उसका भारतीय आहार छूट गया था। अन्य अभ्यागतों के लिये भी यह प्रथम सुअवसर था। इन लोगों ने अपने जीवन में कभी ऐसा स्वादिष्ट आहार नहीं पाया था। खाते-खाते ब्लांक ने कहा—कुमारी हमें तो

फ्रांस में ऐसा भोजन कभी नहीं मिला, यद्यपि मैंने पेरिस के बड़े-बड़े होटलों में खाया है ?

"ठीक है ब्लांक ! यह यहाँ का आहार नहीं वरन् भारतवर्ष का आहार है।"

पश्चात् भोजन करते-करते तीर्थ की ओर अभिमुख हो कुमारी ने पूछा—'तीर्थ' अब तो तुम्हें जाना ही है, क्यों नहीं कुछ दिन रुक कर योरप-भ्रमण कर लेते।

"भ्रमण करने की इच्छा तो बड़ी प्रबल है, परन्तु यह कैसे हो सकता है ?"

"क्यों ? न होने का कारण ?"

"यही कि मुझे रेजिमेंट के साथ जाना होगा।"

"क्यों ? तुम रुक नहीं सकते ?"

"रुक क्यों नहीं सकता, परन्तु यह बात तो छुट्टी मिलने के आधीन है।"

"छुट्टी क्यों नहीं मिलेगी ?"

"सम्भव है, न मिले।"

"ऐसा कैसे हो सकता है ? मैं कहती हूँ अवश्य मिलेगी। तुम प्रार्थनापत्र लेकर मेरे पास आओ, मैं छुट्टी दिला दूँगा।"

"तुम्हारी अत्यधिक कृपा है। तुम यदि चाहोगी तो अवश्य ही छुट्टी मिल जायगी।"

ऐसे समय में ब्लांक कब चूकनेवाला था, तत्काल बोल उठा—तीर्थ ? क्या कुमारी को अभी तक तुम नहीं जान सके ? इनके लिख देने पर सब कुछ हो जायगा।

धीरेधीरे सबों का भोजन समाप्त हुआ। लोग हाथ मुँह साफ कर कुमारी के प्राइवेट रूम में आये। घण्टों बैठे-बैठे सभी युद्ध की बीती

बातें करते रहे, चार बजते ही सभी हाजिरी के लिये अस्पताल में आकर अपने-अपने बिस्तर पर बैठ गये।

२६

आज सेवाश्रम में बड़ा ही चहल-पहल है। अमेरिकन रेजिमेन्ट आज ही फ्रांस से जाने की तैयारी कर रहा है। उसके सैकड़ों घायल सिपाही सेवाश्रम से छुट्टी ले रहे हैं। कुमारी सबेरे से ही व्यस्त है। अभी तक उसने पाँच हजार सैनिकों को छुट्टी दी है। थोड़े सिपाही जिनके घाव अभी कच्चे रह गये हैं, दस पाँच दिन के लिये रोक लिये गये हैं, क्योंकि यात्रा में उनके अस्वस्थ हो जाने का डर है।

पाँचवें दिन दोपहर होते-होते अफ्रिकन-बटालियन भी नेटाल जाने के लिये प्रस्तुत हो जायगा। पाँच सौ वीरों में केवल २७ ही बच रहे थे, वे भी अछूते न थे। सेनानायक तीर्थराज अभी सेवाश्रम में ही पड़ा था। यद्यपि वह स्वस्थ था, परन्तु न मालूम कुमारी ने उसे क्यों रोक रखा था?

दूसरे दिन कुमारी ने अपने मेडसर्वेण्ट के द्वारा तीर्थराज को सेवाश्रम से अपने क्वार्टर में बुलवाया—उसके आते ही उसने बड़े प्रेम से स्वागत किया। तीर्थ भी धन्यवाद देता हुआ बैठ गया। कुमारी ने उसे प्रसन्न देख कुछ दिन अपने यहाँ ठहरने के लिये कहा।

"ठहरने में मुझे कोई आपत्ति नहीं, तुम्हारे में प्रेम और सेवा से दबा हुआ हूँ। तुमने जो सहानुभूति दिखाई है, वह कल्पनातीत है।" तीर्थ ने शिष्टाचारपूर्वक कहा।

"तीर्थ, स्त्री जाति पुरुषों की सेवा के लिये ही है। मैंने आपके

लिये क्या किया ? सेवाश्रम में तो सबों के साथ समान व्यवहार हुआ है ।"

"नहीं, तुम्हारी मुझपर—निःसन्देह विशेष दृष्टि थी ।"

"परन्तु आपकी सेवा का तो मुझे अब अवसर मिलेगा ?"

"पर मैं एक साधारण सैनिक हूँ ?"

"तीर्थ ! साधारण और असाधारण का तो यहाँ कोई प्रश्न ही नहीं है । मैं जानती हूँ, आया हुआ अतिथि महान है ।"

"मैं निर्धन अनाथ और दीन हूँ—तुम सहृदय विदुषी तथा ऐश्वर्यशालिनी के सर्वथा अयोग्य हूँ ।"

"जीवन-धन ! नारी हृदय पहचानती है । वह प्रेम की प्यासी और भाव की भूखी है, उसके सन्मुख कुबेर का कोष तुच्छ है—संसार का अपार वैभव धूल के समान है ।"

"प्रेम निश्चय ही बलवान है—संसारचक्र की धुरी प्रेम पर ही स्थित है । सम्पूर्ण सृष्टि का रहस्य प्रेम ही है । कुमारी, मैं जानता हूँ कि प्रेम ही सर्वस्व है, यही आत्मा और परमात्मा है, निखिल लोक इसी के छत्रछाया में हरा भरा एवं फला फूला दीखता है—यह अमृत है, इसी रस को पीकर संतप्त हृदय, तथा सन्तप्त अन्तःकरण शान्त और शीतल होता है ।"

"जीवितेश ! तुम सचमुच मेरे लिये प्रेमरूपी परमेश्वर हो । मैं जानती हूँ कि प्रेम ही ईश्वर और ईश्वर ही प्रेम है—तुम्हारा प्रेम-पीयूष मेरे हृदय के दाह को नष्ट कर रहा है । तुम्हारा प्रेमामृत मुझे बल दे रहा है । मेरी उत्कट इच्छा है कि आतिथ्य स्वीकार कर इस हृदयरूपी प्रेममन्दिर में वास करो ।"

कुमारी ने आज सब कुछ खोलकर कह दिया । क्या इससे भी अधिक और कुछ अपने प्रियतम को कहा जा सकता है ? तीर्थ ने

कुमारी को अर्द्धनेत्रों से देखते हुये कहा—यह तो तुम्हारे हाथ की बात ।

"जब मेरे आधीन है—तो मैं शीघ्र इसे प्रकट रूप में देखना चाहती हूँ ।"

कुमारी ने मोटर ड्राइवर को बुलावाकर मोटर तैयार करने की आज्ञा दी और आप स्वयं अपने हाथ से प्रियतम का आवेदन पत्र लिखने लगी। थोड़ी ही देर में तीर्थ को लेकर भारतीय सेना के कमाण्डर के पास जाने के लिये चल पड़ी।

ड्राइबर ने कमाण्डर के कैम्प के सामने मोटर खड़ी कर दी। कुमारी उतरी और सीधे कैम्प के पास पहुँचकर अपना विजिटिंग कार्ड भेज दिया। मिस ऐलिस का कार्ड देखते हो कमान्डर बाहर निकल आया और बड़े आदरपूर्वक भीतर ले जाकर, यहाँ तक कष्ट कर आने का कारण पूछा—

"मैं एक विशेष कार्य्य से आई हूँ ।"

"जो कुछ सेवा मेरे योग्य हो निःसंकोच कहिये ।"

"आपके नेटाल भारतीय-बटालियन का सेनानायक जो घायल होकर सेवाश्रम में आया था, उसकी अवस्था अभी पूर्ण सन्तोषजनक नहीं है—यद्यपि उसकी दशा अत्यन्त चिन्तनीय थी, परन्तु अविराम सेवा ने उसे मृत्यु मुख से घसीट लिया है - वह अभी पूर्ण स्वस्थ नहीं हुआ है—इसलिये यहाँ रहकर योरप-भ्रमण करने के लिये छुट्टी चाहता है ।"

"आपको बड़ा कष्ट हुआ, इस क्षुद्र कार्य्य के लिये आप एक पत्र लिख देतीं। इतना कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी ?"

कुमारी ने प्रार्थनापत्र कमान्डर के सामने रख दिया—कमान्डर ने हुक्म देते हुए कहा—मैं इस वीर सेनानायक को जानता हूँ। मैंने स्वयं कई बार वीरता प्रदर्शित करने के कारण इसे सम्मानित किया

है। आप जा सकती हैं। छुट्टी का आज्ञापत्र तथा आवश्यक पत्रादि यथासमय अस्पताल में पहुँच जायगा।

कुमारी कमान्डर को धन्यवाद देते हुए बाहर आई और प्रेमपूर्वक तीर्थ का हाथ अपने हाथ में लेते हुए यह सुसमाचार सुना गई कि छुट्टी स्वीकृत हो गई है। कुमारी अब अपने प्रियतम से मुँह-माँगा पुरस्कार चाहती है, उसने काम भी ऐसा ही किया है।

तुरन्त ही दोनों क्वार्टर में लौट आये। तीर्थराज अब सेवाश्रम का घायल रोगी नहीं है—अफ्रिकन बटालियन का सैनिक नहीं है, बल्कि ऐश्वर्य्यशालिनी कुमारी एलिस का श्रेष्ठ सम्मानित अतिथि है।

आज कुमारी के प्रसन्नता का ठिकाना नहीं है—आज वह अपने चिन्तामणि को पा गई है—आज उसे मनोवांछित धन मिल गया है। आज उसका अभीष्ट सिद्ध हुआ है।

निशा का अवसान हो गया। चकई अपने प्रियतम से मिल गई। चातक के मुख में स्वाति की बूँदे जा पहुँचीं। आज तपस्विनी की तपस्या सिद्ध हुई।

३०

"मित्र! अब नहीं देखा जाता। असह्य हो रहा है। सोने की चिड़िया उड़ जायगी और हमलोग देखते ही रह जायेंगे।" ब्लांक ने उदास होते हुए कहा—

"सीने पर साँप लोट रहा है परन्तु क्या करें? कुछ समझ में नहीं आता। कुमारी उसपर जी जान से मुग्ध है। देखा नहीं, उसकी सिफारिश के लिये स्वयं कमाण्डर के पास गई और अब उसे अतिथि

बनाकर उसने अपने यहाँ टिका रखा है।" कांस्टेलों ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

"हाय! जीवन का आनन्द कुछ नहीं मिला। करा-कराया सब व्यर्थ हुआ।"

"ठीक कहते हो, इस नौकरी में कुछ आनन्द नहीं।"

"कांस्टेलो—मारो गोली, छोड़ो इस झंझट को। आओ! दोनों आदमी मिलकर कुमारी को फँसाने का प्रयत्न करें। समझ लो—दोनों हाथ में लड्डू हैं—इधर सुन्दरी और उधर करोड़ों का माल भी—

"यार! नौकरी तो छोड़ दें, किन्तु काम कैसे चलेगा? भूखों मर जायँगे?"

"कई वर्षों का वेतन तो है, उसी से निर्वाह करेंगे। जब कुमारी अपनी हो जायगी—तब पूछना ही क्या-फिर तो पैसा ही पैसा है।"

"यदि कुमारी न हाथ लग सकी तब क्या होगा?"

"हाथ क्यों नहीं लगेगी? जब हमलोग जुट पड़ेंगे, तब कौन ऐसा कार्य है जिसे नहीं कर सकेंगे? यदि इस प्रकार न मिली तो तीर्थ को मारकर मार्ग निष्कंटक बना लेंगे। इतने पर भी यदि राजी न हुई तो उसे भी मारकर उसका सारा धन हथिया लेंगे।

"अच्छी बात है। जो तुम कहो वह मुझे स्वीकार है। अब क्या करोगे?"

"ठहरो, शीघ्रता न करो, सबसे पहले कुमारी के पास चलो। उससे कहो कि वह हमलोगों की भी छुट्टी मंजूर करा दे और कम से कम १ माह के लिये अपने क्वार्टर में ठहरने का स्थान दे।"

"मान लो कि वह सहमत न हुई तब?"

"इससे क्या? ऐसी स्थिति में हमलोग अन्यत्र मकान लेकर अभीष्ट सिद्धि के लिये प्रयत्न करेंगे।"

"ठीक है, इस प्रकार भी हमलोग सफल हो सकते हैं।"

इस तरह दोनों ने अपने षड्यन्त्र की नींव डाली। परन्तु दोनों में परस्पर अविश्वास चौकड़ी भर रहा था—दोनों यही सोच रहे थे कि कार्य सिद्धि के उपरान्त कुमारी किसकी होगी? दोनों ही कामी कुमारी के लिये लालायित थे।

काम तूने संसार का नाश किया—बड़े-बड़े धर्म्मवीरों को तूने डिगा दिया। बड़े-बड़े महारथियों को रुला दिया तथा एक से एक छत्रधारियों को पद-दलित कर छोड़ा। आज ये दो कुलांगार तेरे ही चक्र में पड़कर महा-अनर्थ करने पर उद्यत हुए हैं।

दोनों कुमारी के क्वार्टर में पहुँचे। वह कौच पर बैठी हुई तीर्थ से बातें कर रही थी। इन्हें आते देख वह बड़ी प्रसन्न हुई। बाहर आकर सम्मानपूर्वक उन्हें अन्दर लिवा गई। दोनों के उचित आसन ग्रहण कर लेने पर, आने का कारण पूछते हुये बोली—

"स्वास्थ्य तो अब अच्छा है न? कहिये और कुछ मेरे योग्य सेवा।"

"आपकी दया है।" ब्लांक ने सम्मान प्रदर्शन करते हुए कहा—

"आपके दर्शन की इच्छा से हम आये हैं।" कांस्टेलों ने सिर नीचा करते हुए कहा—

"बड़ी कृपा है।"

"आज हमलोग आपको कुछ कष्ट देने आये हैं।"

"हाँ हाँ! जो आवश्यकता हो प्रसन्नतापूर्वक कहिये।"

"हमलोग कुछ दिन विश्राम लेना चाहते हैं—अतः आप से यही प्रार्थना है कि हमारी छुट्टी मंजूर करा दें। आपकी कृपा से छुट्टी स्वीकार होने में विलम्ब न लगेगा।"

"हाँ! यदि मेरे कहने से ऐसा हो जायगा तो मुझे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं। क्या आप लोग यह नहीं जानते कि फ्रेंच रेजिमेंट

में युद्ध के बाद छुट्टी नहीं मिलती ? हाँ ! बाहर से आये हुए सैनिकों को अवश्य छुट्टी मिल रही है।"

"आपके कहने से सभी स्वीकार कर लेंगे। कांस्टेलो ने हाथ बाँधते हुए कहा—

"आपसे एक और निवेदन है—हमलोग साधारण सैनिक हैं, बाहर भाड़े का मकान लेकर नहीं रह सकते—यदि रुष्ट न हों तो अपने क्वार्टर में ही थोड़ी-सी जगह दे दीजिये। मकान ठीक हो जाने पर हम लोग तुरन्त चले जायेंगे।" ब्लांक ने दीनता के साथ कहा।

इन दोनों की बातों ने कुमारी को विस्मय में डाल दिया। वह चतुर रमणी थी, उनके आन्तरिक विचारों वह को समझ गयी और बोली—ब्लांक मैं विवश हूँ, यद्यपि तुमने मेरे अधिकार की बात कही है, तथापि मुझे बड़ा दुःख है कि मैं तुम्हारी यह सेवा स्वीकार नहीं कर सकती। इसी समय अमेरिका के हमारे कई सम्बन्धी आ रहे हैं। मैं उन्हीं के स्वागत के लिये सामग्रियों को एकत्रित कर रही हूँ।"

"जब पहले से सम्बन्धियों के आने का समाचार है तब तो कोई बात ही नहीं।" कांस्टेलो ने कहा—

"इस बात के लिये तो मुझे अवश्य दुःख है—परन्तु आप लोगों की छुट्टी के लिये मैं अवश्य चेष्टा करूँगी।"

दोनों अभिवादन कर अस्पताल में लौट आये और कुमारी की रुखाई पर विचार करने लगे। बातें करते हुए ब्लांक ने कहा—कांस्टेलो ! मालूम हो गया कि कुमारी प्रसन्नतापूर्वक हमलोगों के हाथ न आयेगी।

"अरे ! वह छोकड़ी तो बड़ी चलती पुर्जी है—देखो न ! कैसा बहाना कर दिया, सम्बन्धी आने वाले हैं।"

"उसने तो हमलोगों को एकदम ही ठुकरा दिया।"

"मित्र ! दूध की मक्खी के समान निकाल कर फेंक दिया।"

"मुझे तो उसपर सन्देह है कि कहीं लेफ्टिनेण्ट से कहकर हम लोगों की छुट्टी भी न कटवा दे।"

"उसके यहाँ छुट्टी के लिये जाना भी ठीक नहीं था।"

"नहीं ! उसको साथ लेकर चला जायगा। प्रत्यक्ष रूप में वह कुछ अनिष्ट नहीं कर सकती।"

"देर करने से ठीक नहीं होगा। उसको इसके लिये अवसर मत दो। एक प्रार्थना पत्र लेकर अभी चलो।"

दोनों अस्पताल के क्लर्क से अपना-अपना प्रार्थना-पत्र लिखवाकर तुरन्त कुमारी के क्वार्टर में पहुँचे। इतना शीघ्र इन लोगों का, अपने यहाँ आने से कुमारी को बुरा मालूम हुआ—परन्तु अपने मनोभावों को छिपाते हुए पूछा—आप लोग पुनः आ गये—इतनी शीघ्रता करने की कौन-सी बात आ पड़ी।

"क्षमा कीजियेगा ! शीघ्रता न करने से छुट्टी नहीं मिल सकेगी। अभी मुझे मालूम हुआ है कि बहुत लोग प्रार्थना-पत्र देने वाले हैं, जिनका पहले पहुँचेगा, आशा है उन्हें ही छुट्टी मिलेगी।"

"तो क्या अभी चलना होगा ?"

"यदि आपकी कृपा हो।"

"आप लोग शीघ्रता कर रहे हैं—ऐसी स्थिति में यदि छुट्टी न मिली तो मुझे कितना दुःख होगा ? दूसरे आप लोग पोजिशन का ध्यान नहीं करते, मुझे इस बात का दुःख है।"

"हमलोग तो आप ही के आदमी हैं। आपका इसमें कोई पोजिशन नहीं गिरता।"

कुमारी ने देखा इन दुष्टों से पिण्ड न छूटेगा। अतः मोटर पर बिठाकर कमाण्डर के यहाँ पहुँची। इन लोगों को मोटर पर छोड़

आप भीतर गई। कमाण्डर काम कर रहा था—उसने कुमारी को आदरसहित बिठाया और कष्ट करने का कारण पूछा।

"फ्रेंच सिपाहियों के छुट्टी का प्रार्थना-पत्र स्वीकृत किया जा रहा है अथवा नहीं ?"

"जी नहीं ! छुट्टी नहीं मिल रही है।"

"अस्पताल से दो घायल सिपाही प्रार्थना-पत्र लेकर आये हैं। उन्हें बुलवाकर समझा दीजिये, वे बाहर खड़े हैं।"

कमाण्डर ने दोनों को बुलवाया। दोनों सैनिक सैल्यूट करते हुए कमाण्डर के सामने खड़े हो गये।

"तुम लोग छुट्टी क्यों चाहते हो ? क्या इस बात से अनभिज्ञ हो कि लड़ाई के पहले और उसके पश्चात् छुट्टी नहीं मिलती। कैसे तुमको ज्ञात है कि युद्ध बन्द हो गया। जब तक पूर्ण सन्धि न हो जाय किसी को छुट्टी नहीं मिल सकती। यदि कोई रोगाक्रान्त होगा तो उसे सरकारी अस्पताल में रहना पड़ेगा।"

दोनों अपना-सा मुँह लिये सैल्यूट कर बाहर निकले। कुमारी भी यथासमय बाहर आई और पुनः पूर्ववत् दोनों को गाड़ी पर बिठाकर अस्पताल में पहुँचा आयी।

३१

मध्याह्न का अवसान है। कार्टर के बरामदे में भोजन से निवृत्त होकर, आराम चेयर पर बैठे हुए तीर्थराज और कुमारी में इस प्रकार बातें हो रही हैं—

"तीर्थ ! मैंने इन मूर्खों को कई बार समझाया था कि तुम लोग

पहले यह अनुसन्धान कर लो कि फ्रेंच रेजीमेंट अपने सैनिकों को छुट्टी देता है या नहीं, परन्तु ये ज्ञानहीन नहीं समझ सके। आपकी अर्जी स्वीकृत होते देख इन लोगों को कुछ बुरा मालूम हुआ और अपनी छुट्टी के लिये मेरे यहाँ इस विचार से आये कि कुमारी सिफारिश कर दे।"

"उन लोगों ने तो ठीक ही किया, क्योंकि आप पर उनका मुझसे अधिक अधिकार है।"

"यह कैसे ? मेरी समझ में नहीं आता।"

"हाँ ! मैं ठीक कहता हूँ, वे आपके देशवासी हैं, मैं तो एक विदेशी हूँ, विदेशी से देशवासी का अधिकार अधिक होता ही है।"

"सत्य है ! परन्तु आपका मेरे हृदय पर अधिकार है, इसलिये उनका किसी प्रकार का अधिकार मैं नहीं स्वीकार कर सकती। हाँ ! मेरी कृपा उन सबों पर है। यहाँ देशवासी, प्रवासी और विदेशी से कोई सम्बन्ध नहीं।"

"है क्यों नहीं, देशी और विदेशी में अन्तर है।"

मैं इस सिद्धान्त में कोई भेद नहीं रखती। मेरे लिये तो सम्पूर्ण पृथ्वी समान है, मैं भेदभाव नहीं मानती—अपना और पराया नहीं जानती।"

"क्यों, ऐसा क्यों ?"

"हृदय जिसे अपना समझे वही अपना है। किसी के कहने-सुनने से अपना नहीं होता। मैं आपसे अज्ञात थी, किसने पहचाना—मैं आपसे अनभिज्ञ थी, किसने आपको जाना। यह सब हृदय का खेल है। हृदय ने ही आपको परखा है।"

तीर्थ मन ही मन फूल उठा।

निराश होकर अस्पताल में लौटते ही ब्लांक और कांस्टेलो के क्रोध का ठिकाना न रहा—वे कुमारी की चाल से एकदम आग

बबूला हो उठे। उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था कि कुमारी ने ही हमारी छुट्टी में अड़ंगा लगाया है। दोनों भूखे व्याघ्र के समान भयानक हो उठे। ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे अब ये दुष्ट कुमारी को सुख की नींद नहीं सोने देंगे और उस सुन्दर युवक को जिसपर कुमारी का जीवन निर्भर है जीता न छोड़ेंगे।

अस्पताल में पहुँचते ही दोनों अपने-अपने बिस्तर पर बैठ गये। उनकी आँखें लाल हो रही थीं—त्वचायें फड़क रही थीं। दोनों मारे क्रोध के दाँतों से ओठों को दबा रहे थे।

"कांस्टेलो! न छुट्टी ही मिली और न त्याग-पत्र ही स्वीकृत हुआ!"

"अब दूसरा मार्ग केवल भाग निकलने का है। चलो छिपकर कुमारी पर आक्रमण किया जाय? पेरिस की किसी अँधेरी गली में ठहरें, तब इस कार्य के करने में सफलता मिलेगी।"

"ठीक कहते हो ब्लांक!"

तुरन्त ही ब्लांक और कांस्टेलो पेरिस गये। घूमते-घूमते एक पुरानी गली में घुसे। दैवात् उन्हें एक कमरा ऐसा मिल भी गया। ठीक करके अस्पताल में लौट आये, और रातोरात सब समान लेकर सेवाश्रम से चम्पत हो गये।

ब्लांक और कांस्टेलो उसी कमरे में रहते हैं। दिन भर कोई उससे बाहर नहीं निकलता। उन लोगों को भय है कि कहीं ऐसा न हो कि लोग देख लें और आफत में जा फँसे। चोर की दाढ़ी में तिनका वाली कहावत चरितार्थ हुई। रात होने पर दोनों वेश बदलकर निकला करते थे।

एक दिन कांस्टेलो ने कहा—ब्लांक तुम बहुत देरी कर रहे हो, कहीं ऐसा न हो कि कुमारी विवाह कर ले, फिर हम कहीं के न रहें। जो कुछ हो शीघ्र करो—विलम्ब करना ठीक नहीं है।

"हाँ! जहाँ तक हो सके शीघ्र ही इस काम को कर डालना चाहिये।"

इसी प्रकार बातें करते हुए दोनों विचारने लगे कि वहाँ चलकर किस प्रकार काम आरम्भ किया जाय, कैसे तीर्थराज को समाप्त कर दिया जाय। ऐसा करना चाहिये कि साँप मर जाय और लाठी भी न टूटे, आदि-आदि।

इसके लिये एक युक्ति है, रात होते ही हमलोग कुमारी के घर में जा छिपें और जब दोनों सो जायँ तब एक आदमी कुमारी का गला दबाये और दूसरा तीर्थ की हत्या करे। जब तीर्थ समाप्त हो जाय तब कुमारी को डराया-धमकाया जाय।

"उस समय डर से कुमारी स्वीकार कर ले और बाद में फट-कार दे अथवा हम लोगों के विरुद्ध अभियोग खड़ा कर दे तब क्या होगा?"

"नहीं ऐसा नहीं कर सकती वह। जब तीर्थ मार डाला जायगा तब वह हीला-हवाला नहीं कर सकती।"

"नहीं, तुम्हारी स्कीम ठीक नहीं है। हमलोग अपना स्वरूप बदल कर चलें और सबसे पहले कुमारी को किसी कपड़े से ढँककर उसका मुँह दबायें। बाद में तीर्थ की हत्या की जाय। हत्या हो जाने पर कुमारी को बाँधकर छोड़ दें और भाग खड़े हों—जब दूसरे दिन हल्ला हो तो हमलोग भी शोक-प्रदर्शन करने के लिये उपस्थित हो जाँय और कुमारी को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करें।"

इस प्रकार दोनों अपने कार्यक्रम पर विचार करते रहे। घंटों के पश्चात् दोनों ने स्थिर किया कि ब्लांक कुमारी का मुँह दबायेगा और कांस्टेलो तीर्थ को गोली मारेगा।

दूसरे ही दिन हत्या की तिथि निश्चित की गई। सन्ध्या के बीतते ही दोनों पेरिस से लिली आये और छिपकर घूमते-घामते

किसी प्रकार अस्पताल के हाते में घुसकर ब्लांक ने कांस्टेलों से कहा—तुम यहीं रुको, मैं देख आऊँ कि कुमारी और वह काला आदमी किधर है। ब्लांक बड़ी सावधानी से दीवार की छड़ डाककर कुमारी के कार्टर के सुन्दर मैदान में पहुँच गया।

रात अभी अधिक नहीं गई थी—तीर्थराज बैठा हुआ समाचार पत्र पढ़ रहा था और कुमारी पास ही बैठी हुई बड़े ध्यान से उसे सुन रही थी। सामने ही एक बहुत बड़ा शीशा टँगा था। उसी समय एकाएक कुमारी की दृष्टि शीशे के ऊपर जा पड़ी। तुरन्त ही उसने तीर्थ से कहा—मालूम होता है कि बाहर से कोई छड़दिवाली डाककर कम्पाउण्ड के भीतर आया है। वह देखो! शीशे में दिखलाई पड़ रहा है। उस पेड़ के बगल में—घूमने वाले का स्वरूप विद्युत्-प्रकाश में कुछ-कुछ दिखलाई पड़ रहा है। मुझे तो यह परिचित-सा जान पड़ता है। तीर्थराज ने भी आइने में देखा।

"यह चेहरा तो कुछ कुछ ब्लांक से मिलता-जुलता है। तीर्थराज के कुछ बोलने के पूर्व ही कुमारी ने कहा—

"आपको उन लोगों के प्रति सन्देह हो गया है। वे बिचारे इतनी रात को यहाँ क्यों आवेंगे? वे तो आज दस दिन से गायब हैं। न मालूम कहाँ भाग गये हैं?"

"नहीं तीर्थ! मुझे सन्देह ही नहीं, मैं तो उसे स्पष्ट देख रही हूँ, मुझे उनसे भय है।"

"किस प्रकार का भय?"

"वे दोनों कोई षड्यन्त्र रच रहे हैं। आज से २० दिन पहले उन सबों ने मुझसे रहने के लिये इसी कार्टर में स्थान माँगा था—शायद उनका कोई विशेष अभीष्ट रहा हो।"

"क्या आप कुछ सोच सकती हैं कि उनका क्या उद्देश्य हो सकता है।"

"वे सैन्य-विभाग के असभ्य और उजड्ड सिपाही हैं। वे पूरे दुष्ट होते हैं—कोई सज्जन उन्हें अपने यहाँ नहीं ठहरा सकता। उनसे सर्वदा भय है रहता कि ये मूर्ख कब क्या न कर डालें।"

"वे तो आपके प्रेम के भूखे थे।"

"कहीं प्रेम का भूखा काम-लोलुप होता है? और मान लीजिये कि ऐसा हो भी—तो भी वे मेरे प्रेम के अधिकारी नहीं हो सकते।"

"आपने उस दिन स्वयं अपने मुँह से कहा था कि प्रेम छोटा और बड़ा नहीं समझता। फिर यह विषम प्रेरणा कैसी? वे तो आपसे प्रेम की भिक्षा माँग रहे हैं।"

"क्या आप मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं?"

"नहीं! नहीं! यह बात नहीं है।"

"तब फिर ऐसा क्यों कहते हैं कि वे प्रेम की भिक्षा माँग रहे थे।"

उनकी प्रगति बतला रही है, उनके आचरणों से बोध हो रहा है कि वे लट्टू हो रहे हैं। आप पर शलभ की भाँति मर-मिटना चाहते हैं।"

"प्रेम बाँटने की चीज तो नहीं। और अब उसपर मेरा अधिकार ही कहाँ रहा।"

"जो हो बिचारे उद्योग में तो लगे हैं। परिश्रम तो कर रहे हैं।" तीर्थ ने मुस्कराते हुए कहा—

"जल से मक्खन निलकाने का प्रयत्न व्यर्थ है—बालू से तेल के लिये उद्योग करना मूर्खता है।"

दोनों बहुत देर तक इसी प्रकार बातें करते रहे, परन्तु उस आदमी की आहट नहीं जान पड़ी। और उन लोगों ने समझ लिया कि कोई अस्पताल का नौकर रहा होगा। इस प्रकार अर्द्धरात्रि तक

ब्लांक वहीं बैठा ही रह गया। बैठा-बैठा उठकर छड़दिवाली से पार होकर कांस्टेलो से आ मिला।

"क्यों क्या बात है?" कांस्टेलो ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"यार! न मालूम किस प्रकार कुमारी मेरी आहट पा गई।"

"अरे, यह छोकड़ी तो बड़ी ही खिलाड़ी है।"

"अब रात भी अधिक बीत चली है, चलो लोट चलें। नहीं तो सबेरा हो जाने पर कोई देख लेगा।"

"हाँ! चलो चलें, कहीं ऐसा न हो कि आफत में फँस जायँ।"

"अब चौथे दिन रात में हत्या का प्रयत्न करेंगे, आज तो विफल ही हुये।"

"आने जाने का मार्ग तो सब समझ गये हो न।"

"हाँ! हाँ! इसके लिये तुम्हें चिन्ता न करनी होगी। ले जाना और बाल-बाल बचा लाने का भार तो मेरे ऊपर है।"

३२

संसार विचित्र है। सांसारिक जीवों को पद-पद पर विपत्तियों का सामना करना पड़ता है—परन्तु मनुष्य-समाज नहीं चेतता। स्वार्थ ही दुःखों की जड़ है, इसी से संसार अधोगति का आखेट हो रहा है।

मनुष्य सचमुच स्वार्थी जीव है। स्वार्थ के कारण धर्म और अधर्म नहीं समझता। पाप और पुण्य नहीं जानता तथा सत्य और असत्य का ज्ञान नहीं रखता। स्वार्थ ही अनिष्ट का हेतु है! यही वैर-विरोध का कारण है। इसीसे संसार की प्रेरणा से उद्धत हो रहे हैं। कांचन

और कामिनी का स्वार्थ उन्हें ज्ञानान्ध बना रहा है। वे दोनों अपने आपे में नहीं हैं। दोनों ही अपने-अपने अभीष्ट की सिद्धि में लगे हैं—दोनों ही कुमारी को प्राप्त कर धन-कुबेर बनना चाहते हैं।

यह कैसे हो सकता है? कुमारी एक है और पाणिग्रहण करने वाले दो। एक स्त्री दो पुरुष। समस्या कैसे हल हो। दोनों एकछत्र निष्कंटक राज्य करना चाहते हैं।

ब्लांक बड़ा धूर्त था। वह कांस्टेलो से तीर्थ को मरवाकर आप कुमारी को प्राप्त करना चाहता था। उसे यह भय था कि कहीं ऐसा न हो कि बाद में कांस्टेलो मुझपर भी आक्रमण कर बैठे। उससे तो उचित है कि पहले मैं कुमारी से ही मिलकर क्यों न लाभ उठाऊँ। ऐसा निश्चय कर वह दूसरे ही दिन संध्या के समय कुमारी के यहाँ पहुँचा।

ब्लांक को एकाएक अपने क्वार्टर में देख कुमारी विस्मित हो उठी। यद्यपि उसके हृदय में चिन्ता का श्रोत उमड़ पड़ा था, परन्तु बलपूर्वक अपने मनोभावों को दबाते हुए उसे अन्दर बुला लिया।

ब्लांक भयभीत था, घबड़ा रहा था और निःश्वास लेता हुआ हाँफ रहा था। उसकी ऐसी स्थिति देख कुमारी ने कहा—इतना घबड़ाते हुए तुम कहाँ से आ रहे हो?

"कुमारी! आज मैं बड़े आवश्यक कार्य से आया हूँ। आपकी सेवाओं ने मुझे क्रीत-दास बना लिया है। वास्तव में मैं चिरऋणी हूँ। मेरा धर्म है कि आपको भावी विपत्तियों से सदैव सतर्क करता रहूँ तथा बचाऊँ।"

"भाई बात तो कहो।" उत्सुकता पूर्वक कुमारी ने पूछा।

"आपसे आज उऋण होने के लिए आया हूँ। आप तो कांस्टेलो को जानती ही हैं—उसने भी मेरे साथ ही नौकरी छोड़ दी है। आजकल वह इसी पेरिस में ठहरा हुआ है और आपसे बदला लेना

चाहता है। आपने उसे छुट्टी नहीं दिलाई, इससे वह रुष्ट है। कल वह मुझसे मिला था—उसने मुझे बहुत प्रलोभन देकर कहा कि हम तीर्थराज को मारकर कुमारी से विवाह करने की चेष्टा करेंगे। तुम हमारी मदद करो। इसके लिये हम तुम्हें एक लाख डालर पुरस्कार देगें। कल ही उसकी तिथि निश्चय की गई है।

"क्या ऐसी बात है ?"

"हाँ! यही षड्यन्त्र रचा गया है, परन्तु घबड़ाने की कोई बात नहीं। मैं भी तो उसके साथ ही रहूँगा। ज्यों ही वह गोली छोड़ने का प्रयत्न करेगा, त्योंही पकड़कर उसे पुलिस के हवाले कर दिया जायगा।"

"तब तो पुलिस का प्रबन्ध पहले से ही करना होगा ?"

"नहीं इसकी क्या आवश्यकता, हमीं लोग उसे पकड़कर बंदी कर लेंगे।"

"वाहवा! खूनी को इस प्रकार कैसे पकड़ सकोगे। तुम भूलते हो।"

"पुलिस पहले से यदि आ जायगी तो वह नहीं आयेगा।"

"जब तक पुलिस नहीं आयेगी उसे क्या पकड़कर मैं नहीं रोक सकता, मुझसे क्या वह बलवान है ?"

"ब्लांक! जैसा कहोगे, वैसा ही होगा, तुम्हारे ऊपर मेरा पूर्ण विश्वास है—मैं तुम्हें प्यार की दृष्टि से देखती हूँ—यह समाचार सुनाकर तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है।"

"कुमारी! मैं सदैव आपका शुभचिन्तक हूँ। मैं आपको हृदय से प्यार करता हूँ। यदि ऐसा न होता तो आप को यह खबर क्यों देने आता ?"

"इसके लिये धन्यवाद है!"

ब्लांक के जाने के बाद कुमारी ने सभी वृतान्त तीर्थ को कह

सुनाया। वह शान्त प्रकृति का व्यक्ति था। अतः उसने गम्भीरता पूर्वक कहा—कुमारी मेरे लिये तुम अपने को संकट में मत डालो।

"घबड़ाओ नहीं। इन बाधाओं से कुमारी विचलित होने वाली नहीं।"

"कुमारी मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, मैं तुम्हारे लिये अपना प्राण तक दे सकता हूँ, तुमने मेरी प्राण रक्षा की है।"

"आपने भी मेरी प्राण रक्षा की है। मैंने जो कुछ किया वह तो सेवा-कार्य्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।"

"और मैंने ही क्या किया है? तुम्हीं कहा—"

"हाँ! हाँ! मैं कहती हूँ और सौ बार कहूँगी कि क्या आपने मेरी प्राण रक्षा नहीं की है?"

"नहीं कदापि नहीं।"

"आप भूलते हैं, क्या आपने किसी रमणी की जर्मन सैनिकों से रक्षा की थी?"

तार्थ स्तंभित हो गया। उसीने कुमारी की जान बचाई थी, यह जान उसे महान् आश्चर्य हुआ। उसे ही आहत अवस्था में देखकर कुमारी ने कहा था कि इसे कहीं देखा है। वे घटनायें उसे स्मरण हो आईं। कुमारी ने कहा तुम चुपचाप देखो—मैं किस प्रकार इन सबों को उल्लू बनाती हूँ।

कुमारी तुरन्त पुलिस अफसर के बँगले पर गई और सभी वृतान्त कह सुनाया। पुलिस अफसर बड़ा बुद्धिमान था। वह मि० एलिस का परम हितैषी तथा शुभकांक्षी था—उसने कुमारी से कहा, बेटी घबड़ाना नहीं, मैं आज ही से तुम्हारे यहाँ खुफिया पुलिस के इन्स-पेक्टर मि० जारडीन को नियुक्त कर देता हूँ। वे तुम्हारी रात दिन देख-भाल किया करेंगे।"

कुमारी के घर पर आज पुलिस की कड़ी चौकसी है—उसके

कमरे में दो तीन पुलिसमैन मुश्तैद हैं। कुमारी और तीर्थ आज अपने पेरिसवाले विशाल भवन में चले गये हैं। रात भर पुलिस सतर्क रही परन्तु हत्यारे नहीं आये।

सबेरा होते ही कुमारी आ पहुँची। सिपाहियों से उसे यह हाल मालूम हुआ कि वे लोग नहीं आ सके। कुमारी ने कहा—मुझे जान पड़ता है कि उन्हें पुलिस की खबर लग गई है, इसीलिये वे लोग नहीं आ सके। शायद अचानक किसी दिन आ धमकें। उनके रंग-ढंग अच्छे नहीं हैं।

३३

ब्लांक आज शाम से रफूचक्कर है। न मालूम किस खोह में जा घुसा है। उसका एकाएक गायब होना कांस्टेलो को खटक रहा है। रात भी बहुत बीत गई, ब्लांक नहीं आया। उसका सन्देह और उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। वह बार-बार यही सोचने लगा कि ब्लांक कुमारी से मिलकर कहीं मुझे पकड़ा न दे।

ओहो! ब्लांक कितना बड़ा स्वार्थी है। हत्या करने के लिये मुझे आगे बढ़ाना चाहता है, मैं कभी ऐसा नहीं कर सकता। मैं मि० तीर्थ पर कभी फायर नहीं करूँगा। बिना ब्लांक की हत्या किये मेरा अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता, यदि मुझे तीर्थ को मारना ही पड़े तो ब्लांक पर भी शूट करूँगा। निश्चय ही वह कुमारी के यहाँ गया है। कल मैं भी सबेरे ही कुमारी से मिलूँगा और ब्लांक का सारा भंडाफोड़ कर दूँगा। यह मुझे सरासर धोखा देना चाहता है।

चालाक के आँख में धूल झोंकना चाहता है। उस बच्चे को मालूम ही नहीं कि उसकी पॉलिसी भी कोई जानता है ?

वह अवश्य मेरी बुराई करता होगा, परन्तु इससे क्या ? मैं कल पहुँच कर सब बना लूँगा। मैं ब्लांक के हवाई महल को बात की बात में चकनाचूर कर दूँगा। मेरे सामने उसका प्रयास कभी सफल नहीं हो सकता। मैं कांस्टेलो हूँ, कांस्टेलो! ब्लांक के ऐसे-ऐसे कितने धूर्तों को मैंने ठीक कर डाला है। कुमारी मेरी है—मैं उसे अपने अधिकार में करूँगा ही।

कांस्टेलो घंटों इसी प्रकार सोचता-विचारता किवाड़ खुला छोड़ कर ही सो गया। आधी रात बीते ब्लांक धीरे-धीरे उस गली में पहुँचा। किवाड़ खुला देख अन्दर आया और धीरे से सो रहा। कांस्टेलो को जगाने का उसे साहस नहीं हुआ, क्योंकि उसे डर था कि कहीं पूछ न बैठे कि कहाँ गये थे ? इसके हृदय में सन्देह उत्पन्न हो जायगा। स्वार्थी ब्लांक यह भी नहीं पूछ सका कि खाना-पीना हुआ है अथवा नहीं। कांस्टेलो भोजन बनाकर शाम से इसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने स्वयं भी नहीं खाया था।

एक पहर रात रहते ही कांस्टेलो की नींद टूट गई। उसने देखा—ब्लांक अपने बिस्तर पर खर्राटे भर रहा है। वह कब आया उसे ज्ञात न हुआ। उसे गहरी नींद में गाफिल देख कांस्टेलो धीरे से उठा और किवाड़ खोल उसी गली में गायब हो गया।

कुछ रात रहते ही कांस्टेलो ने सेवाश्रम के गेट पर पहुँच कर अपने आने की सूचना कुमारी को दी। कुमारी सो रही थी। स्वयं-सेविका ने कांस्टेलो को ले जाकर कुमारी के बरामदे में बिठा दिया।

बहुत सबेरे कुमारी उठकर जैसे ही बाहर आई कि कांस्टेलो बरामदे में दिखलाई पड़ा। तुरन्त उसके पास पहुँची और स्वागत करती हुई बोली—कांस्टेलो! तुम आज बहुत दिन पर दिखलाई पड़े।

"क्या करूँ ? कार्य्यवश नहीं आ सका।"

"तुम्हें नौकरी छोड़ने की क्या जरूरत थी ?"

"नौकरी से तबीयत ऊब-सी गई थी।"

"अच्छा, कहो, सबेरे-सबेरे दर्शन देने का कारण ? छुट्टी न मिलने के कारण रुष्ट तो नहीं हो ?"

"कुमारी ! आज मैं एक आवश्यक कार्य्य से आया हूँ, यह बात एकदम गुप्त है, बैठ जाओ तो सुनाऊँ।"

"मेरे नौकरी छोड़ने का कारण छुट्टी न मिलना था। मैं ब्लांक के बहकावे में आ गया, वह दुष्ट तीर्थ को मारकर तुमसे विवाह करना चाहता है।"

"अरे ब्लांक तो बड़ा ही कुरूप और कुविचारी मनुष्य है। तुम तो जानते ही हो कि मैं सदा ही उससे घृणा करती चली आ रही हूँ। तुम्हारे साथ रहने पर भी वह नहीं सुधर सका, इसका मुझे घोर दुःख है।"

"मुझे भी उसके अवारेपन पर तरस आती है। मैं तो उसे सिखलाते-सिखलाते थक गया, परन्तु वह नहीं सुधर सका।"

"क्या यह निश्चित है कि वह ऐसा कुकृत्य करने के लिये प्रस्तुत है।"

"अरे वह तो मुझसे कल ही आने के लिये कह रहा था—परन्तु मैंने सोचा, कुमारी ने हमारा बड़ा उपकार किया है, मैं नीच नहीं बनूँगा। आज मैं उसी उपकार का बदला चुकाने आया हूँ।"

"कांस्टेलो यह नहीं हो सकता, ब्लांक जिसके लिये यह षड्यन्त्र रच रहा है, वह सफल नहीं होगा। मैं उससे विवाह नहीं कर सकती। मैं तो तुम्हारे सामने उसे एकदम तुच्छ और निकृष्ट समझती हूँ।

"यह आप की दया है।"

"कांस्टेलो! अब तुम सब कुछ कहने के लिये स्वतंत्र हो। मैं तुम्हें खोकर जीना नहीं चाहती। मेरा तुमपर अटल विश्वास है—मैं तुम्हें उसी समय से चाहती हूँ जब से तुम्हें अपस्ताल में देखा है। तुम्हारे ही लिये मैंने प्रीतिभोज दी थी, परन्तु उसके बाद तुम चले ही गये। मैंने कितना खोजवाया। एक नहीं ५—७ बार स्वयं हैरान हुई परन्तु तुम्हारा पता न चला। अतः विवश होकर रह गई।

"ब्लांक बड़ा धूर्त मनुष्य है कुमारी! वह मुझसे तीर्थ पर गोली चलवाना चाहता है।"

"उसकी क्या योजना है?"

"वह मुझसे तुम्हारा गला दबवायेगा।"

"मेरा गला?"

"हाँ! हाँ! और उसी समय विवाह करने के लिये तुमसे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करवायगा।"

"काँस्टेलो! मेरा मन तुम्हीं पर आसक्त है—ब्लाङ्क बीच में रोड़ा अटका रहा है—किसी प्रकार वह दुष्ट हटता तो काम बनता। मैं तुमसे विवाह करने के लिये तैयार हूँ, परन्तु पहले इस दुष्ट को दूर करना आवश्यक है।"

"मेरे हाथ से वह अब बच नहीं सकता।"

"कोई युक्ति है?"

"है क्यों नहीं, तीर्थ को मारने के बहाने उसी पर गोली दाग दूँगा।"

"इससे तो अच्छा हो कि तुम अकेले तीर्थ पर गोली न छोड़ो। ब्लांक से कहना कि दोनो आदमी शूट करें, गोली चल चुकने पर ब्लांक से कहना कि देख आओ मरा या नहीं। जब वह दुष्ट अन्दर देखने जाय तब तुम उसपर गोली छोड़ देना, यदि गिर पड़ा तो ठीक ही है नहीं तो पुलिस के हवाले कर दिया जायगा।"

"उपाय तो ठीक है, परन्तु गला दाबनेवाली बात रह जायगी।"

"उससे कह देना कि कुमारी तो सो रही है—उसका गला दाबने से क्या लाभ होगा।"

"बिल्कुल ठीक कहती हैं आप।"

"वह कब आयगा ?"

"निश्चय तो कल ही के लिये था परन्तु मैंने टालमटोल कर दिया। अब रात को निश्चित हुआ है।"

"ठीक है, देरी न करना, नहीं तो काम बिगड़ जायगा—जब मार्ग का कंटक दूर हो जायगा, तब हम और तुम दोनों...?"

"आप की कृपा ही यथेष्ठ है।"

"कृपा नहीं, मैं तुम्हें चाहती हूँ—क्या यह कभी संभव हो सकता है कि तुम्हारे रहते मैं उस मूर्ख से विवाह करूँ! कदापि नहीं।"

इसी प्रकार बातें कर झटपट कुमारी से बिदा हो ब्लांक के जाग जाने के पूर्व ही वह अपने कमरे में पहुँच गया। ब्लांक उसी प्रकार चित्त पड़ा-पड़ा फुफकार रहा था।

३४

ब्लांक और कांस्टेलो ने कुमारी को चिन्ता में डाल दिया—परन्तु वह बड़ी निर्भीक स्त्री थी। वह इन आकस्मिक विपत्तियों से विचलित नहीं हुई बल्कि और दृढ़तापूर्वक स्थिर हो कार्य्य करने लगी।

कुमारी को विश्वास था कि ब्लांक अपनी सफाई देने के लिये आज अवश्य आयगा—क्योंकि कल रात वह कांस्टेलो को लेकर नहीं आया है। कुमारी यह सोच ही रही थी कि सामने से आता

हुआ वह दिखलाई पड़ा—कुमारी ने बड़े हाव-भाव से उठकर उसका स्वागत किया और प्रेमपूर्वक उसे अपने कमरे में ले गई—मेडसर्वेन्ट को शीघ्र जलपान लाने के लिये भेजा—अब क्या था? ब्लांक मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न होने लगा। उसे विश्वास हो गया कि अवश्य ही कुमारी मेरी ओर आकर्षित हो गई है, अब पौ बारह है। जलपान कराकर कुमारी ने कहा—

"प्रिय ब्लैंक! तुम बड़े झूठे हो, कल मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही, पर तुम नहीं आये?"

"कुमारी! मैं इसी के लिये क्षमा माँगने आया हूँ—रात हम लोगों में मतभेद हो गया है।"

"मतभेद कैसा?"

"कांस्टेलो को सन्देह हो गया है कि ब्लांक कुमारी से मिलकर कहीं धोखा न दे दे, इसीलिये उसने कहा कि तीर्थ पर मैं गोली नहीं चलाऊँगा।"

"तब, ऐसी स्थिति में उसे किसी प्रकार समझा-बुझाकर यहाँ लाना था—तुम लोगों में तो निश्चय हो गया था न, कि कांस्टेलो गोली चलायेगा और तुम मेरा गला दबाओगे। फिर क्या हुआ?"

"कुमारी! मैंने खूब समझाया—परन्तु वह मूर्ख कुछ भी नहीं समझ सका—लाचार हो आधे राह से लौट जाना पड़ा।"

"देखो ब्लांक, मैं सत्य कहती हूँ—तुम्हीं मेरे आधार हो, मैं तुम्हें हृदय से प्यार करती हूँ, तुम-सा सुन्दर युवक मिलना कठिन ही नहीं वरन् पूर्ण असम्भव है। मैंने अपना प्रेम आज तक प्रकट नहीं किया—इसका कारण मेरी सुलभ लज्जा है, मैं तुम्हारे ही लिये उस भारतीय के पास जा बैठती थी और कुछ भी मेरा अभीष्ट न था। जिस समय से मैंने तुम्हें देखा है—उसी समय से प्रेम-विह्वल हूँ।"

"कुमारी ! आज तुम्हारा प्रेम देखकर मेरा हृदय भर आया है। निःसन्देह—तुम्हारा आन्तरिक भाव ही मुझे आकर्षित कर रहा था—नहीं तो आज का यह प्रेमालाप असम्भव था—प्रेमाकर्षण पूर्व से ही प्रगति कर रहा था।"

"बिल्कुल ठीक कहते हो—परन्तु अब आगे कैसे काम चले—किसी प्रकार यह कंटक दूर कर प्रेम की ग्रन्थि सदा के लिये दृढ़ कर दी जाय।"

"कुमारी ! मेरा भी यही विचार है—मैं शीघ्रातिशीघ्र काँस्टेलो से सम्बन्ध त्यागकर तुमसे आ मिलना चाहता हूँ।"

"अवश्य ! जब तक वह जीवित रहेगा—निश्चय ही कभी सुख की नींद नहीं सोने देगा। मान लो कि हमलोग कहीं भी चले जाँय—वह छाया के समान पीछे-पीछे डोलता रहेगा। हमारे और तुम्हारे प्रेम में वही बाधा पहुँचा रहा है।"

"क्या न मैं स्वयं ही उसे मार कर कण्टक दूर कर दूँ?"

"मैं तो तुम्हें ऐसा कभी न करने दूँगी, क्योंकि ऐसा करने से तुम्हें कठिन राजदण्ड भोगना पड़ेगा।"

"मैं कहती हूँ उसी के अनुकूल कार्य करो।"

"कहो ! अवश्य करूँगा।"

"काँस्टेलो गोली छोड़ने में सन्देह करता है तो उससे कहो कि दोनों आदमी एक साथ तीर्थ पर फायर करें। कुमारी का गला दबाने की कोई आवश्यकता नहीं। जब वह तीर्थ पर गोली चलाने लगे, तब तुम कांस्टेलो पर चला देना। उधर तीर्थ को गोली लगेगी और इधर कांस्टेलो भी गिर पड़ेगा। ऐसा करने से तुम्हें राजनियम में भी नहीं फँसना पड़ेगा। इसके बाद ही मैं पुलिस को सूचना दूँगी और स्पष्ट रूप में कह दूँगी कि कांस्टेलो की गोली से

तीर्थ मरा है। मेरी गोली से जिसे मैंने आत्मरक्षा के लिये छोड़ी थी, कांस्टेलो काल-कवलित हुआ है।"

"कुमारी! इस स्कीम को मैं पूर्णरूप से स्वीकार करता हूँ।"

"मेरी स्कीम टोस है, इसमें कोई दोष नहीं। मैं तो कहूँगी कि जहाँ तक हो सके शीघ्र ही इसे कर डालो।"

"जिस दिन आप कहें उसी दिन करने के लिये मैं तैयार हूँ।"

"कल आधी रात का समय ठीक रहेगा, अँधेरी रात भी है।"

"अवश्य, कल आधी रात को ही आऊँगा।"

ब्लांक इस प्रकार कहता हुआ पेरिस की ओर चल पड़ा—उसके जाते ही कुमारी ने जारडीन को बुलवाया और उससे ब्लाङ्क के आने का हाल कह सुनाया। जारडीन ने मुस्कुराते हुए कहा—कुमारी मैं ब्लाङ्क और आपकी सभी बातें सुन चुका हूँ। आपने उसे खूब पट्टी पढ़ाई।

"हाँ! इस बार वे निश्चय ही आयेंगें।"

"इसके लिये मैं भी तैयार हूँ।"

"कल ही रात की तो बात है।"

"हाँ कल आधी रात में दोनों आयेंगे।"

"चिन्ता नहीं।"

कुमारी! मैं निश्चय ही दनों को पकड़ूँगा। मेरा प्रबन्ध इतना कड़ा होगा कि वे भाग नहीं सकते। मैं ऐसा व्यूह बना लूँगा कि दोनों आकर आप ही उसमें फँस जायेंगे।

"कल उन दोनों में मतभेद हो गया था—इसलिये नहीं आ सके।"

"ठीक है, मेरा अनुमान सत्य निकला।"

"मि० जारडीन, खूब होशियारी से काम करना?"

"इसके लिये आप चिन्तित न हों।"

"तीर्थराज जिस कमरे में रहते हैं वहाँ एक तद्रूप पुतला सुला दिया जायगा, बाकी हमलोग एक कमरे में रहेंगे।"

"ठीक है, ज्यों ही वे लोग गोली छोड़ेंगे त्यों ही पकड़ लिये जायेंगे।"

"अच्छा अब आप जाइये और समुचित प्रबन्ध करने में लग जाइये—कल ही यह घटना होगी।"

३५

जारडीन फ्रान्स का एक चतुर जासूस था—उसने ऐसी-ऐसी हजारों घटनाओं को अपनी आँखों से देखा था और सैकड़ों हत्यारों को अपने बुद्धि-कौशल से पकड़ा था। वह बड़े जीवट का आदमी था। परन्तु आज कुछ चंचल-सा हो रहा था। वह अपने उत्तर-दायित्व का मूल्य भली-भाँति समझता था—उसे भय था कि ब्लाङ्क और काँस्टेलो यदि नहीं पकड़े गये तो उसकी भारी बदनामी होगी और वह इस उच्च पद से हटा दिया जायगा।

कुमारी यद्यपि सब कुछ जानती थी परन्तु डर रही थी। उसे अपने प्राण का भय न था। वह तीर्थ के लिये डर रही थी—उसका बाल बाँका न हो, इसके लिये चिन्तित थी। अपने हृदयेश्वर को दुःखी देखना नहीं चाहती थी। उसे मार कौन सकता है? वह तो उसके लिये ही सब कुछ कर ही रही है।

तीर्थराज एकदम शान्त था, पूर्णतः गम्भीर और निश्चल था—उसे इस बात की तनिक चिन्ता नहीं थी कि ब्लाङ्क या काँस्टेलो के हाथ से मारा जाऊँगा। वह आत्मिकबल-सम्पन्न युवक था—उसने

बड़ी-बड़ी विपत्तियों को सहन किया था। वह जानता था कि उन लोगों का मैंने कुछ भी नहीं बिगाड़ा है—अतः उनसे किसी प्रकार का भय नहीं है। पूर्वीय संस्कृति ने ही उसे इतना विशाल हृदयवाला तथा नम्र बना दिया था।

रात्रि अधिक बीत गई—ब्लाङ्क और कॉंस्टेलो कहीं पास की एक झाड़ी में आकर इस अभिप्राय से छिप गये कि निस्तब्धता होने पर जायेंगे। दोनों मन ही मन इष्टसिद्धि के लिये व्यग्र हो रहे थे। ब्लाङ्क सोच रहा था कि यदि यह मेरी गोली से न मरा तब क्या होगा? कहीं ऐसा न हो कि मुझे ही मार दे और उधर कॉंस्टेलो यह विचार रहा था कि गोली चलाने के बाद यदि ब्लाङ्क मेरे कहने के अनुसार तीर्थ को देखने के लिये न गया तो!

धीरे-धीरे आधी रात हो गई—चारो ओर सन्नाटा हो जाने पर ब्लाङ्क और कॉंस्टेलो धीरे-धीरे झाड़ी से निकले—दोनों का हृदय दहल रहा था, धड़कते हुए हृदय से आगे बढ़े और क्वार्टर के पीछे की दीवार से चढ़कर भीतर घुस आये। इनकी आहट ने जारडोन को सतर्क कर दिया।

कुमारी ने तीर्थराज का कमरा ब्लाङ्क को बता दिया था—उसने तुरन्त टार्च जलाकर देखा, तीर्थराज के कमरे में एक आदमी चद्दर तानकर सो रहा था—ब्लाङ्क को विश्वास हो गया कि तीर्थ ही खर्राटे मार रहा है। ब्लाङ्क ने कॉंस्टेलो को संकेत किया कि तीर्थ ही सो रहा है, फायर करो। परन्तु कॉंस्टेलो ने यह कहते हुए अस्वीकार किया कि मैं अकेले नहीं छोड़ सकता। तब ब्लाङ्क ने कहा—कोई चिन्ता नहीं, दोनों आदमी उसपर फायर करेंगे।

कांस्टेलो सहमत हो गया। दोनों अपनी-अपनी पिस्तौल ठीक-कर एक सीध में खड़े हो गये परन्तु किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि गोली छोड़ें। दोनों एक दूसरे की प्रतीक्षा करने लगे—

जारडीन उस अँधेरे कमरे में यह सब देख रहा था। उसने सोचा ये लोग दूसरे के फायर करने पर ही गोली छोड़ेंगे, फिर क्यों न इस अँधेरे में मैं ही नरमेध की आहुति प्रारम्भ कर दूँ!

जारडीन ने ब्लांक का निशाना कर गोली दाग दी, पर व्यर्थ सिद्ध हुई। गोली की आवाज सुन ब्लांक ने समझा कि काँस्टेलो छोड़ चुका और काँस्टेलो ने समझा कि ब्लाँक ने फायर किया है। बस दोनों ने धड़ाधड़ फायर कर दिया। काँस्टेलो की गोली कल्पित पुतले में जा धँसी। ब्लाँक की गोली काँस्टेलो की छाती पार कर गई और तत्काल ही वह निर्जीव होकर कमरे में गिर पड़ा।

गोली की आवाज सुनते ही छिपी हुई पुलिस निकल आई और उसने कार्टर को घेर लिया। ब्लांक पकड़ा गया। पुलिस ने उसका पिस्तौल रखवा लिया और तुरन्त ही फोन द्वारा उच्च अधिकारियों को यह समाचार भेज दिया। बात की बात में कुमारी का कार्टर पुलिस अधिकारियों से खचाखच भर गया। काँस्टेलो की लाश हटाई गई तथा ब्लाँक पुलिस के हिरासत में ले लिया गया।

आज कुमारी का उपाय काम कर गया। वह जैसा चाहती थी वैसा ही हुआ। मतभेद ने दोनों का सत्यानाश कर दिया। कुमारी अपने युक्ति-कौशल से बाल-बाल बच गई और अपने प्रियतम को भी बचा लिया।

× × × ×

आज पेरिस का कोर्ट ठसाठस आदमियों से भरा है। सभी उत्सुक हो ब्लाँक को देखने के लिये उपस्थित हैं। उसके अविचारपूर्ण कार्य्य की सभी एक स्वर से निन्दा कर रहे हैं।

ब्लाँक कटघरे में खड़ा है। जारडीन ने इस प्रकार अभियोग पढ़कर सुनाया—ब्लाँक ने इस षड्यन्त्र का समाचार जब से कुमारी को दिया तभी से हमलोग सतर्क रहने लगे थे।' इसके पश्चात् इसका

मित्र कॉस्टेलो भी एक दिन कुमारी के पास आया था और षड़यन्त्र का समाचार कह गया था। हमलोग इनके ताक में लगे ही थे, कि दैवात् एक दिन यह घटना आ घटी। ब्लॉक ने स्वयं ही कॉस्टेलो के ऊपर गोली चलाई जिससे उसकी वहीं पर मृत्यु हो गई।

जारडीन की बात समाप्त होते ही कुमारी ने कहा—मैं इसके बारे में पहले कुछ भी नहीं जानती थी। षड़यन्त्र होने के पाँच सात दिन पहले ब्लॉक मेरे पास आया और उसने षडयंत्र का हाल कह सुनाया। मैं समझ गई कि इनसे पिंड छुड़ाना साधारण नहीं बल्कि अत्यन्त कठिन है। यह सोचकर मैंने तुरन्त पुलिस को यह सूचना दे दी। उसी दिन से पुलिस अधिकारियों ने मेरे यहाँ उचित प्रबन्ध कर दिया। इसी बीच में कॉस्टेलो भी मुझसे मिला और षड़यन्त्र की बातें बता गया।

दोनों बारी-बारी से आकर सभी बातें बता गये और मैंने पुलिस को इसकी खबर दी। ब्लॉक धूर्त और विश्वासघाती व्यक्ति है। इसने स्वयं अपने मित्र का घात किया है। इसके विश्वासघात ने ही इसे दण्ड का भागी बनाया है!

इसके उपरान्त चीफ जज ने ब्लॉक को अपनी सफाई देने के लिये कहा—

उसने निर्भीकता पूर्वक उत्तर दिया—मुझे इस मामले में कोई सफाई नहीं देनी है। मैं केवल दो एक बातें कहना चाहता हूँ। मैंने अपने मित्र की हत्या की है। अवश्य ही मैं संसार के सामने विश्वास-घाती हूँ। मैं नहीं जानता था कि कुमारी मुझे इस प्रकार धोखा देगी। मैं इसके प्रेम में आसक्त होकर सभी बातें कह जाता था। निःसन्देह मेरी भूल ने ही मुझे धोखा दिया—कुमारी को पाने के लिये ही हम दोनों ने नौकरी छोड़ी थी। अब मैं अपने मित्र की हत्या के अभियोग में सूली पर चढूँगा, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं,

परन्तु यह सुन्दरी कुमारी आज मुझे विष के समान घृणित बोध हो रही है।

मैं तीर्थराज की सच्चे हृदय से प्रशंसा करूँगा कि वह हम दोनों के अभिप्राय को जानकर भी सदैव प्रेम-व्यवहार करता रहा—मेरी दृष्टि में वह मनुष्य नहीं बल्कि प्रत्यक्ष देवता है।

सभी की बातें सुनकर जज ने विद्वत्तापूर्ण न्याय किया। उसने मार्मिक शब्दों में कहा—जब सम्पूर्ण विश्व, प्रेम की ओर अग्रसर हो रहा है तब यह कुलाङ्गार घृणा का प्रचार करने चला—यह महासमर में घायल होकर सेवाश्रम में आया था। यह भली-भाँति जानता था कि तीर्थ हजारों कोस से फ्रांस की सहायता के लिये आया है। फ्रांस की मर्यादा उल्लंघन कर, उस उपकारी की हत्या के लिये इन नराधमों ने नौकरी छोड़ी। ये पूर्णतः हत्या के लिये तत्पर थे। इन्होंने अपने मित्र के ही प्रति नहीं बल्कि अपने प्रिय देश फ्रान्स के प्रति भी घोर विश्वासघात किया है। इन दुष्टों ने एक दूसरे देश से आये हुये मित्र की हत्या करके फ्रान्स को सदा के लिये कलङ्कित करना चाहा था, परन्तु कुमारी की चतुरता ने फ्रान्स के मर्यादा की रक्षा की। अतः एक दूसरे देश से आये हुए तथा अपने प्राणों की बलि देकर फ्रान्स की हस्ती बचाने वाले की हत्या करने के अभियोग में, मैं ब्लाङ्क को फाँसी की आज्ञा देता हूँ।

३६

ब्लाङ्क और काँस्टेलो की भयानक अकाल मृत्यु से तीर्थराज घबड़ा उठा। उसने सोचा—मेरे ही कारण ये दोनों अकालकाल कवलित

हुए हैं, निःसन्देह मैं ही इन दोनों की मृत्यु का आदि कारण हूँ। ओह ! मेरे द्वारा यह क्या हुआ ? दो प्राणों की हत्या !

सोचते-सोचते उसके शान्त हृदय में विषाद की लहरें उठने-बैठने लगीं। एकाएक सुस्थिर मन विषमय वृत्तियों का आखेट होने लगा। सोचते-ही-सोचते वह शान्ति का पुजारी चञ्चल हो उठा। ब्लाङ्क और कॉस्टेलों की मूर्तियाँ उसके नेत्रों के सामने नाचने लगीं।

अब तीर्थराज उदास रहने लगा। फ्रान्स की सुन्दर भूमि—उसे सहारा की मरुभूमि के समान जान पड़ने लगी। कुमारी का आनन्द-दायी भवन उसके लिये दुखदायी हो गया। शीतल पवन शुष्क और नीरस-सा ज्ञात होने लगा। दो ही चार दिन में तीर्थराज में विचित्र परिवर्तन हो गया। दिन-दिन वह उदास और अनमना होता गया।

कुमारी प्रियतमा को उदास देख मन ही मन अत्यन्त चिन्तित हो उठी। उसने सोचा—मुझसे कोई अपराध तो नहीं हो गया है, जिससे प्राणनाथ रुष्ट हो गये हैं ? रुष्ट तो अवश्य जान पड़ते हैं। आज कई दिनों से मैं देख रही हूँ कि न तो समय पर भोजन करते हैं न सोते है और न हँसकर बातें ही करते हैं। इधर कई दिनों से मैं उन्हें अत्यन्त गम्भीर और उदास देखती हूँ। उनकी उदासी मेरे लिये मरण है। वे मेरे जीवन हैं—उनके बिना मैं नहीं जी सकती। हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में लिखी बातें अक्षरशः सत्य हैं। जो अपने पति को प्रसन्न नहीं रख सकती, वह स्त्री जाति की कलङ्क है। मैं आज ही उनके चरणों पर सिर रख, क्षमा माँगूगी और जिस प्रकार हो सकेगा उन्हें प्रसन्न करूँगी।

सायङ्काल भ्रमण के पश्चात्, तीर्थराज के लौटने पर डरते-डरते कुमारी उसके कमरे में गई और नम्रतापूर्वक उसके चारणों को स्पर्श कर बोली—हृदयेश्वर। जो कुछ इस अबोध अनाथिनी से त्रुटि हुई हो उसे क्षमा करो। प्राणेश्वर ! तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो—तुम्हीं मेरे

हृदय हो, फिर तुम्हारे बिना मैं कैसे सुखी रह सकती हूँ ? अपनी अनुचरी समझकर मुझे क्षमा करो नाथ ! आप प्रसन्न रहें—आपकी प्रसन्नता में ही मेरी प्रसन्नता है।

तीर्थराज कुमारी के इस रहस्य को नहीं समझ सका। एक तो वह चिन्तित ही था, दूसरी चिन्ता और यह सामने आ गई। कुमारी ने उसका क्या बिगाड़ा है ? वह क्यों क्षमायाचना कर रही है ? तीर्थ-राज कुछ क्षण तक गम्भीर हो गया।

प्रियतम को मौन देख कुमारी विह्वल हो उठी। अब और अधिक देर तक प्रतीक्षा करना उसके लिये असह्य हो गया। उसका गला भर आया। नेत्रों से अश्रुकण निकल-निकलकर गालों पर ढुल-कने लगे।

कुमारी को अत्यन्त दुखी देख तीर्थराज भी धैर्य खो बैठा। उसने कहा—प्राणेश्वरी ! तुम क्यों दुखी हो रही हो ? तुमसे कोई अपराध नहीं हुआ है। तुम्हारा कोई दोष नहीं। तुमने तो आज तक कोई ऐसी बात नहीं कही, जिससे मेरे हृदय पर आघात पहुँचा हो।

कुमारी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा—प्रियतम ! फिर आप आज तीन-चार दिन से उदास क्यों हैं ? मैं आपके इस उदासी का ही कारण जानना चाहती हूँ। विश्वास रखिये, अपने सुख की बलि देकर भी यदि आपको प्रसन्नता मिले तो मैं अपने को सफल नारी समझूँगी।

कुमारी की बातों से तीर्थराज अपनी सारी मनोव्यथा भूल गया। बोला—प्रिये ! और कोई बात नहीं—उन दोनों हत्याओं के कारण ही मेरा चित्त दुःखी है। मैं लाख प्रयत्न करता हूँ परन्तु हृदय को शान्ति नहीं मिलती। मेरी चेष्टाएँ विफल हो जाती हैं। प्रिये ! मैं देखता हूँ कि यहाँ का वातावरण अब मेरे लिये उपयुक्त नहीं है। मेरा यहाँ ठहरना युक्तिसंगत नहीं दिखलाई पड़ता। जब तक मैं यहाँ

रहूँगा ये बीती घटनायें मेरे नेत्रों के समक्ष नाचा करेंगी जिससे मैं कभी सुखी नहीं रह सकूँगा ।

कुमारी ने कहा—प्राणनाथ ! मैं वही कार्य्य करूँगी जिससे आप प्रसन्न रहें—मैं आपकी हूँ । आप जो कहेंगे, मुझे शिरोधार्य होगा । आपकी वाणी ही मेरी पथ-प्रदर्शिका होगी । आपका क्या विचार है?

मैं अब जन्मभूमि का दर्शन करना चाहता हूँ । अपनी टूटी फूटी कुटिया की स्मृति मुझे विह्वल कर रही है । मेरा मन अब यहाँ नहीं लगता—हृदय मातृभूमि के लिये अधीर हो रहा है—प्रिये ! अब मुझे आज्ञा दो ।

तीर्थराज के उदासी का वास्तविक कारण जान कुमारी प्रसन्नता-पूर्वक बोली—प्रियतम ! चिन्ता न करो । मैं कल ही भारत की यात्रा करूँगी—अब मैं आज्ञा देने योग्य नहीं हूँ । आप की अनुगामिनी हूँ—अर्द्धांगिनी हूँ । सुख-दुख में पति के साथ रहकर पति की सेवा करना ही स्त्री धर्म है । प्राणेश ! आज ही मैं यात्रा का प्रबन्ध करती हूँ ।

कुमारी ने अपनी सारी पैतृक सम्पत्ति तथा लाखों रुपये जो इधर-उधर बिखरे पड़े थे उन्हें पेरिस के बैंक में जमा कर दिया और १ लाख पाउन्ड लेकर चलने के लिये तैयार हो गई ।

× × × ×

आज कुमारी विदा हो रही है—उसके सभी आत्मीय तथा स्नेही चिंतित हो रहे हैं । सेवाश्रम से उसका सामान स्टेशन पर पहुँचाया जा रहा है । आज ही ट्रेन द्वारा लिली से मार्सलीज जायगी ।

ट्रेन आ गई । स्टेशन दर्शकों से खचाखच भरा है । कुमारीकी सेवा ने सारे फ्रान्स के हृदय पर अधिकार जमा लिया था । अबाल वृद्ध सभी उसके वियोग में रो रहे हैं । यही वह स्टेशन था जहाँ कभी घायलों की गाड़ियाँ आतीं तो आहतों की चीत्कार से आकाश-मण्डल

अकम्पित हो उठता था—परन्तु आज स्वस्थों का आनन्दोल्लास छा हो रहा है।

कुमारी का सारा सामान ब्रेक में रख दिया गया। कुमारी और तीर्थ दोनों रिजर्व कम्पार्टमेंट में बैठ गये—इसी बीच में सैकड़ों फ्रान्स निवासियों ने उस कम्पार्टमेंट को घेर लिया और नम्रतापूर्वक कहने लगे—कुमारी! अब हमलोग क्या करें? ऐसे समय में हमलोगों को आप क्या सन्देश देती हैं?

कुमारी ने कहा—प्रिय देशवासियों! भाई और बहनों! आप लोग चिन्ता न करें, मैं धर्म-बन्धन से विवश हो गयी हूँ, फिर भी मैं यह कहने का दुस्साहस कर रही हूँ कि आपलोग एक दूसरे की भलाई में लगे रहें, परस्पर वैमनस्य और अविचारपूर्ण कार्य्य न करें, मैं अपने कार्यकर्त्ताओं से आशा करूँगी कि वे मेरे पीछे भी उसी प्रकार सेवा के व्रती रहें।

टन, टन, टन शब्द होते ही गाड़ी चल पड़ी। लोग उस समय तक ट्रेन को उत्सुकतापूर्वक देखते रहे, जब तक वह दृष्टि से ओझल नहीं हो गयी।

३७

जहाज ने सीटी दी, क्षणमात्र में ही उनके लंगर खोल दिये गये और सीढ़ियों का पटरा खींच लिया गया। जलयान धीरे-धीरे धुआँ छोड़ता हुआ मार्सलीज के सुन्दर उपकूल से दूर होने लगा। देखते ही देखते तट की सीमा छोड़ वह भूमध्य सागर के अशान्त वक्ष पर द्रुत गति चलने लगा।

कुमारी अपने प्रियतम के साथ डेक पर खड़ी एक टक मार्स-लीज के सुन्दर उपकूल को देख रही थी। ज्यों-ज्यों जहाज तट से दूर होता जा रहा था कुमारी उतनी ही गम्भीर और शान्त होती जा रही थी। थोड़ी ही देर में उसने एक दीर्घ निःश्वास ली और गद्गद् कंठ से बोली—

मातृभूमि अब मैं तुमसे बिदा हो रही हूँ। वीरगर्भे! तुम्हारे सुखदायी गोद में आज तक मैंने खेल-कूदकर आनन्दपूर्वक जीवन बिताया है। मातामही! तुम्हें बार-बार प्रणाम है। यह शरीर और मन तुम्हारा ही है—यह देह जिसके कारण टिकी है, वह आत्मा तुम्हारी ही है। मैं तुम्हारी ही हूँ। माँ वसुन्धरे! मेरी पूजनीया, आज मैं तुमसे पृथक हो रही हूँ।

मातेश्वरी! विवश हूँ, धर्म-बन्धन से लाचार हूँ, जन्मदा तेरे ऋण से उऋण नहीं हो सकी इसका मुझे स्वयं दुःख है। कर्म कहता है तुम्हारी सेवा करूँ और धर्म कहता है कि पति के चरणों में शरीर अर्पण कर दूँ।

धनधान्य पूर्णे! स्त्रियों के लिये पति ही सर्वस्व है। तुम्हारी कुल वधुओं ने ही कहा है कि 'पति बिन सूना सब संसार' पति भक्ति ही स्त्रियों के लिये उत्तम योग है, पति सेवा ही श्रेष्ठ तत्व है तथा पति के साथ आज्ञाकारिणी अनुचरी के समान रहकर जीवन बिताना ही स्त्री-जीवन का रहस्य है। माँ! अब तो मेरे प्रियतम जहाँ रहेंगे, वहीं मेरा देश होगा। मातृभूमि! अब मैं धर्म की रक्षा के लिये जा रही हूँ, आशीर्वाद दो, जिसमें मैं अपने व्रत को पूर्ण कर सकूँ। इतना कहकर कुमारी ने पुनः जन्मभूमि को प्रणाम किया और गम्भीर हो उसी ओर एकटक निहारती रही।

कुमारी के गम्भीर मुद्रा को देख, उसका पाणिपल्लव हाथ में लेते हुए तीर्थराज बोला—प्रिये! क्यों चिन्तित हो? क्या किसी

प्रकार का कष्ट है ? क्या जन्मभूमि का वियोग दुःखदायी हो रहा है ?

तीर्थराज की बातें सुन कुमारी ने कहा—जीवनधन ! भला तुम्हारे साथ मुझे किस प्रकार का कष्ट हो सकता है ? तुम्हारी सेवा से शूल-फूल बन जायगा और रौरव भी मेरे लिये स्वर्ग के समान सुखदायी होगा। हाँ, मातृभूमि का वियोग कुछ कष्ट दे रहा है पर जहाँ आप हैं, वहाँ कष्ट कितनी देर तक टिक सकेगा।

इस प्रकार बातें करते-करते दोनों बहुत देर तक डेक पर टहलते रहे। कुमारी कभी-कभी उपकूल की ओर प्रेमभरी दृष्टि से ताक दिया करती थी, परन्तु थोड़ी ही देर में मार्सलीज का सुन्दर उपकूल अदृश्य हो गया। जहाज भूमध्य सागर के उन्मत्त तरंगों को चीरता हुआ आगे बढ़ रहा था।

भगवान भानु अशान्त महासागर में प्रविष्ट हो गये। संध्या का अवसान हो गया। फिर भी युगल जोड़ी डेक पर ही घूमती रही—कुछ काल के पश्चात् निशा की कालिमा बढ़ते देख कुमारी ने कहा—मेरे सर्वस्व ! चलो, अब विश्राम करें, एकाएक समुद्र के खुले वातावरण में विशेष रहना ठीक नहीं है। हमलोगों को डेक पर आये पूरे चार घण्टे हो चुके। जहाज ठीक चार बजे मार्सलीज से खुला था।

दोनों डेक पर से धीरे-धीरे उतर कर अपने कमरे में आ गये। थोड़ी देर के बाद कुमारी ने कहा—कुछ भोजन कर लो। यद्यपि तीर्थराज की विशेष रुचि न थी फिर भी कुमारी के आग्रह पर खाना ही पड़ा। भोजन से निवृत्त होकर दोनों परस्पर वार्तालाप करते हुए धीरे-धीरे निद्रा देवी के गोद में जा गिरे। जहाज रात भर सागर को चीरता रहा।

निशा की कालिमा दूर हो चुकी थी। वायु का वेग अशान्त

था। बड़ी-बड़ी ऊँची तरंगे उठकर जहाज को प्रकम्पित कर रही थीं। कप्तान अपने कर्मचारियों के साथ बड़ी चतुरता से जहाज को आगे बढ़ा रहा था, फिर भी जहाज के काँपने से सभी यात्री जाग उठे और विपत्ति की सम्भावना से भयभीत होने लगे—परन्तु समुद्र अधिक देर तक भयंकर नहीं रह सका। दिनकर के उदय होते ही शान्त हो गया।

सूर्योदय होने पर तीर्थराज और कुमारी अपना कमरा बन्द कर डेक पर गये। जहाज ठीक बीचोबीच समुद्र में जा रहा था। फ्रान्स की भूमि बहुत पीछे छूट चुकी थी। अब तो जलयान मिश्र और इटली के सीमा को पार कर रहा था—दोनों ओर की तट भूमि इतनी दूर थी कि नेत्र उसे देख नहीं पाते थे।

धीरे-धीरे सैकड़ों आदमी डेक पर पहुँच गये। उनमें अधिक फ्रान्सिसी और अँग्रेज थे। कुछ पारसी और भारतीय इसाई भी दिखलाई पड़ रहे थे। इसके अतिरिक्त अमेरिकन टोली भी थी। सभी यात्री घंटों डेक पर भ्रमण, व्यायाम तथा खेल-कूद करते रहे। सात बजते ही जलपान का समय हुआ और सभी अपने-अपने कमरों में पहुँच गये।

तीसरे दिन दोपहर के बाद जहाज स्वेज नहर को पार कर लाल सागर के वक्ष पर थिरकता हुआ आगे बढ़ने लगा। सारा समुद्र लाल ही लाल दिखलाई पड़ता था। जान पड़ता था कि समुद्र लाल नहीं, बल्कि साक्षात रक्तनिधि है। कमरे से इस मनोहर दृश्य को देखते हुए तीर्थराज और कुमारी दोनों बातचीत कर रहे थे। प्रसंग नवीन नहीं बल्कि पुराना था। कुमारी ने कहा—प्रियतम! सारा इतिहास समाप्त हो गया परन्तु आपने मेरी इच्छा पूरी नहीं की।

कुमारी के इस प्रश्न ने तीर्थराज को आश्चर्यचकित कर दिया।

वह तत्काल बोल उठा—प्रिये वह कौन-सी बात है, जिसे मैंने पूरा नहीं किया—मेरा सर्वस्व तुम्हारा ही है।

तीर्थराज की बातें सुन कुमारी ने हँसते हुए कहा—प्यारे! आपने क्या कहा था? क्या भूल गये?

तीर्थराज अब तो और भी चक्कर में पड़ा। उसका मस्तिष्क उसे ढूँढ़ने लगा, परन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे नहीं पा सका। अन्त में नम्रतापूर्वक पूछा—प्यारी! वह कौन-सी बात है?

कुमारी ने कहा—क्या अपने मुझसे अपने शैशवकाल का इतिहास बताने का वचन नहीं दिया था?

तीर्थराज हँस पड़ा और बोला—प्रिये! ठीक कहती हो, मैंने कहा था, आज मैं अपने जीवन की धरोहर तुम्हें भेंट करूँगा—निःसन्देह वह शैशव की स्मृति ही मेरे पास शेष है। उसके अतिरिक्त संसार में मेरे पास और कुछ नहीं।

इतना कहकर तीर्थराज ने अपने कोट का बटन खोल भीतर के पॉकेट से एक छोटी-सी किताब निकालते हुए बोला—प्रिये! लो तुम्हें इसी में मेरे शैशव की कहानी मिलेगी, देखो सामने वह रक्त सागर हिलोरें मार रहा है।

तुम्हारे कर कमल लाल हैं—और पुस्तक भी लाल ही है। उसका एक-एक अक्षर रक्त रूप है—मेरे शैशव के रक्त कणों का ही इस लाल किताब में वर्णन है।

कुमारी ने बड़े प्रेम से हाथ में उस पुस्तक को लेकर मस्तक से लगा लिया।

तीर्थराज ने कहा प्रिये! मेरे पास यही *'प्रेम के आँसू' के

---

* इस पुस्तक को तीर्थराज के सौदागर मित्र ने आग्रह से अफ्रिका में उस समय छपवाया था, जब उसने आत्मबल से पशुबल पर विजय

अतिरिक्त और कुछ न था। आज मैं अपना सर्वस्व तुम्हें दे चुका, परन्तु इस छोटी पुस्तिका का मूल्य क्या हो सकता है?

कुमारी ने कहा—यह प्रेम के आँसू सबसे अधिक मूल्य रखता है। मैं इसे सचमुच अमूल्य समझती हूँ, यही मेरे लिये अब बाइबिल और गीता होगी तथा यही मेरी पथ-प्रदर्शिका बनेगी। निःसन्देह इस जीवन-संग्राम में यही मेरी रक्षिका बनकर विजय-पथ दिखलायेगी।

उसी दिन से कुमारी उसका अध्ययन करने लगी। तीर्थराज की वीरता, सदयता और निर्भयता की छाप उसके हृदय पर बैठ गई—वह जब तक जहाज पर रही, नित्य सायं प्रातः उसे पढ़ा करती थी।

जहाज धीरे-धीरे रक्त सागर को पार करता हुआ अरब महा-सागर में चलने लगा। यात्रियों को भूमध्य सागर तथा रक्त-सागर से भी अधिक इस अशान्त जलनिधि में सतर्क रहना पड़ा। सातवें दिन सायंकाल को ही जहाज के कप्तान ने कहा—कल सबेरे ही जहाज इण्डिया गेट पर पहुँच जायगा।

तीर्थराज आज विशेष आनन्दित है। उसके हृदय में तरह-तरह की उमंगे उठ रही हैं। वर्षों से छिपी हुई मातृभूमि की याद आज एकाएक उमड़ पड़ी है—कल जन्मभूमि का दर्शन मिलेगा, यही सोचकर वह प्रसन्नता में विभोर हो रहा है—कुमारी भी अपने प्रियतम को प्रसन्न देखकर आह्लादित हो रही है—दोनों बहुत

प्राप्त किया था—सहस्रों विपत्तियों के सामने, देखते ही देखते गुलामी की जंजीर तोड़ डाली थी तथा दीन अनाथों के लिये सत्य और धर्म का मार्ग दिखलाया था—युवक इसे सदैव गुप्त रखता था—वास्तव में यह इसका जीवन चरित्र था।

रात तक अपने कमरे में बैठे हुए अपनी-अपनी मातृभूमि की बातें करते रहे।

निशा राक्षसी दूर हुई, अन्धकार का साम्राज्य धीरे-धीरे नष्ट होने लगा। चंचल समुद्र आज शान्त था। तीर्थराज और कुमारी आज सूर्योदय के पूर्व ही डेक पर पहुँच गये -- उनके चंचल नेत्र पूर्व दिशा की ओर स्थिर थे।

एकाएक मार्तण्ड पूर्व की ओर दिखलाई पड़ा, उसकी स्वर्ण रश्मियाँ चमक उठीं—उसके रक्तमंडल से अपूर्व आभा निकल कर किसी वस्तु पर पड़ रही थी, जिसका प्रकाश स्वर्णगिरि के समान बोध हो रहा था—तीर्थराज और कुमारी उसी को एक टक देखते रहे। धीरे-धीरे जहाज उसके निकट और निकट आने लगा—जिससे उसकी प्रभा निखरती गई—

छः बज चुका था—वह प्रकाशमान वस्तु स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगी। वह थी स्वर्ण-सम्पन्न बम्बई नगरी। यहाँ के बड़े-बड़े धन कुबेरों के उच्च अट्टालिकाओं के उन्नत स्तम्भ ही, सूर्य रश्मियों के द्वारा स्वर्णगिरि के समान चमक रहे थे।

भारत के पवित्र तट भूमि का दर्शन करते ही तीर्थराथ का युवक हृदय पुलकित हो उठा, उसके शरीर के रोम-रोम खड़े हो गये तथा हृदय देश प्रेम के अनन्त सागर में डुबकियाँ लगाने लगा। कुमारी भी इस सुख से वंचित नहीं रह सकी। दोनों ने एक साथ हाथ जोड़कर मातृभूमि के सन्मुख अपना शीश झुका दिया।

उपसंहार

संसार परिवर्तनशील है। निरन्तर इस भवसिन्धु में उत्थान और पतन की तरंगे उठा करती हैं। इस नाशवान संसार में सर्वत्र भावी का चक्र चलता रहता है। वास्तव में उसी के द्वारा हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश तथा अन्यान्य शुभाशुभ फलों का अधिकार सांसारिक प्राणियों को मिलता रहता है।

निःसन्देह भावी प्रबल होता है—तीर्थराज कहाँ का अधिवासी और कहाँ जा पहुँचा? क्या विचार करके गया और क्या हो गया? उसने क्या-क्या सुख की इच्छायें की थीं और कैसी-कैसी आपत्तियाँ आईं? परन्तु नहीं, उसने सबों का प्रसन्नतापूर्वक आलिङ्गन किया। यहाँ तक कि अपने को मृत्यु के मुख में डाल दिया। वाह रे बहादुर नवयुवक! विघ्नबाधाओं से तनिक भी विचलित नहीं हुआ। अन्त में उसके साहस और निःस्वार्थ सेवाभाव का यथोचित पुरष्कार मिला।

आठ बजते-बजते फ्रांसिसी जहाज इण्डिया गेट पर पहुँच गया। पोर्ट के स्विचमैन की झंडी देते ही जलयान का लंगर समुद्र में गिरने लगा। देखते ही देखते जहाज जटी से भिड़ गया। सैकड़ों कूलियों ने दौड़कर जहाज के मोटे-मोटे जंजीरों को जटी के खूटों में जकड़ दिया। तत्काल उस ऊँचे जहाज से काठ की सीढ़ियाँ हड़हड़ाती हुई जटी पर खड़ी हो गईं—लोग दनादन उतरने और चढ़ने लगे।

तीर्थराज पहले से ही तैयार था। सामान कूलियों के सिर पर उठवाकर कुमारी के साथ धीरे-धीरे जटी पर उतरा। भारत की पवित्र भूमि पर उतरते ही उसने सादर अभिवादन करते हुए कहा—मातेश्वरी ! निष्णात्-पोषिका ! धन्य ! हे श्रद्धा, प्रेम और विश्वास की मातामही ! धन्य ! जन्मदे ! यह शरीर तुम्हारा भागी है—जब तक इसकी एक साँस भी बाकी रहेगी तेरी सेवा से नहीं हटेगा। मैं तेरे लिये ही जीऊँगा और तेरे ही लिये मरूँगा।

कुमारी और तीर्थ दस बजते-बजते ग्रैंड होटल में पहुँचे। होटल के मैनेजर ने एक सुन्दर हवादार कमरा इन लोगों के लिये खाली करवा दिया। दोपहर के भोजन के पश्चात् दोनों बड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करते रहे। चार बजते ही मोटर से भ्रमण के लिये निकल पड़े। छः बजते-बजते कुमारी और तीर्थ मालावार पहाड़ी पर पहुँचे।

भगवान भानु पश्चिम जलधि में प्रविष्ट हो रहे थे। व्योम रक्त रंजित हो उठा था। मालावार की चोटी गुजरात की परियों से सुशोभित हो रही थी। ठीक उसी समय एक अनिन्द्य सुन्दरी सुन्दर नवयुवक के साथ मालावार की चोटी पर पहुँची। उस रमणीक स्थान में विहार करनेवाली सहस्रों गुजराती और पारसी रमणियाँ उसके रूप सौन्दर्य को देख मोहित हो गईं। एक दो नहीं, छोटे-बड़े सभी इन दोनों की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगे।

तीर्थ अपनी प्रियतमा के साथ आगे बढ़ रहा था। सहसा किसी ने पीछे से कहा—"तीर्थ !" "मेरे तीर्थ"। परिचित कण्ठ स्वर ने तीर्थ को चौंका दिया। उसने तत्काल पीछे फिर कर देखा—यह क्या? उसकी विपत्ति का मित्र उसकी ओर बढ़ा आ रहा था। तीर्थराज डरबन के उस सौदागर को देख दौड़कर उसे हृदय से लगा लिया। दोनों प्रेम से गले-गले मिल रहे थे। यह दृश्य देख कुमारी को बड़ा

आनन्द प्राप्त हुआ। वह भी शिष्टतापूर्वक उन लोगों के पास जा पहुँची और सौदागर को अभिवादन कर खड़ी हो गई।

अपने तीर्थ को कुशल देख सौदागर गद्‌गद् हो उठा। बहुत देर तक दोनों में अतीत की बातें होती रहीं। पुनः सौदागर ने कुमारी का समाचार पूछा—तीर्थ ने फ्रांस की आद्योपांत घटना कह सुनायी। सौदागर कुमारी का शिष्ट व्यवहार तथा शुद्ध आचरण देख अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

आठ बजते-बजते लोग मालावार से नीचे उतरे। सौदागर भी महासमर के बाद ही डरबन से बम्बई आया था। यहाँ उसकी बड़ी-बड़ी कई कोठियाँ थीं। उसने तुरन्त तीर्थ का सामान होटल से अपनी कोठरी पर मँगवा लिया। तीर्थ ४-५ दिन तक अपने मित्र का अतिथि रहा। एक दिन रात को ९ बजे बॉम्बे मेल से डुमरी के लिये चल पड़ा।

दूसरे दिन ग्यारह बजे रात में लोग मोगलसराय पहुँचे। कुमारी और तीर्थ उतर पड़े। बॉम्बे मेल गया होकर कलकत्ते जाती है। उन्हें सीधे ई० आई० आर० से बढ़ना था। तीन बजे की पैसिंजर ट्रेन से उन्हें जाना पड़ा। छः बजते-बजते पैसिंजर आरा के प्लेटफॉर्म पर जा रुकी।

तीर्थ के डुमरी में पहुँचते ही हल्ला मच गया। सभी कुमारी को देख भयभीत होने लगे। तीर्थ पहले अपने घर पर गया परन्तु वहाँ क्या था? सारा मकान गिर चुका था, चौखट, किवाड़ और धन्नियाँ सभी पास पड़ोस वाले उठा ले गये थे। इस ९ वर्ष के लम्बे समय में डुमरी का पूर्ण परिवर्तन हो गया था।

तीर्थराज के चले जाने पर सरकार ने उसकी जगह-जमीन बाग-बगीचा और खेती-बारी का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया था—इस समय सरकार की ओर से देखभाल करने के लिए एक जिलेदार नियुक्त

था। तीर्थराज के बाग में जहाँ प्लेग के दिनों में गाँववालों ने झोप-ड़ियाँ डाली थीं, वहाँ छावनी बन गयी। तीर्थ और कुमारी गाँव के लोगों से मिलते हुए छावनी में जा पहुँचे। जिलेदार ने तीर्थराज का परिचय पाकर बड़ी आवभगत करते हुए हृदय से उसका स्वागत किया। कुमारी और तीर्थ दोनों वहीं उतरे।

बाग की अनुपम सुन्दरता तथा प्रकृति की रमणीयता देख कुमारी अत्यन्त प्रसन्न हुई। पेरिस जैसे विशाल नगर में उसने कभी इतनी स्वच्छता और मनोहरता नहीं देखी थी। कभी उसे इतने खुले स्थान में रहने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था। वह मन ही मन तीर्थ की जन्मभूमि की सराहना कर रही थी।

दत्तराज का बेटा विलायत से मेम लेकर आया है यह बात बिजली के समान फैल गई। आस-पास के गाँवों से सैकड़ों आदमी नित्य उसे देखने आने लगे। इधर तीर्थराज ने जिलेदार के कहने से अपने आने की सूचना सरकार को दे दी। ५, ७ दिन में ही उसे गवाह के साथ कचहरी में उपस्थित होने की आज्ञा मिली। गाँव के प्रधान-प्रधान व्यक्तियों को लेकर तीर्थ ठीक समय पर हाकिम के पास पहुँचा। वास्तव में तीर्थराज यही है, प्रमाण पाकर हाकिम ने उसे उसकी पैत्रिक सम्पत्ति पर अधिकार करने की अनुमति दे दी—इधर सरकार के प्रबन्ध से ४५ हजार रुपया भी उसका जमा हो चुका था। तीर्थ आज डुमरी का मुखिया हो गया।

अपनी पैत्रिक सम्पत्ति पा जाने पर भी तीर्थ ने जिलेदार को नहीं हटाया उसने सारा कारबार उसी के हाथ में छोड़ दिया। आप कुमारी के साथ जनता की सेवा में लग गया।

विदेश से लौटने तथा मेम के साथ विवाह करने के कारण स्वजातीय पुरुषों ने एक आन्दोलन खड़ा कर दिया। उस प्रान्त के सभी ब्राह्मण क्षत्रिय तीर्थ को भ्रष्ट समझने लगे। लोगों की यह

धारणा बँध गई थी कि जहाज पर चढ़ते ही धर्म चला जाता है। भाइयों ने जाति से पृथक कर दिया—लोग तीर्थ के हाथ का जल पीने में पाप समझने लगे।

परन्तु इसपर भी तीर्थ विचलित नहीं हुआ। डटा रहा। उसने अपने संकल्प को नहीं छोड़ा। गाँव वाले उसे भाँति-भाँति का दुःख देने लगे, परन्तु वह सबों के प्रति उपकार ही करता गया। जहाज से भारत-मही पर पाँव रखते ही उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं तेरे लिये ही जीऊँगा और तेरे लिये ही मरूँगा।

कुमारी ने अपनी सारी सम्पत्ति फ्रांस से मँगा ली। कुछ ही दिनों के बाद उसी बाग में एक विशाल 'कुमारी तीर्थ सेवाश्रम' की स्थापना की गई—एक धर्मशाला बनवायी गयी और एक अनाथालय की नींव डाली गई—यथा समय कुमारी ने अपनी स्वर्गवासिनी सास के नाम से एक 'बनिताश्रम' भी खोल दिया।

फिर एक बार दिशायें काँप उठीं—वह भयंकर महामारी जो आज से १० वर्ष पहले भीषण जनपद ध्वंस कर चुकी थी, सोन के किनारे थिरक उठी। देखते-ही-देखते उसने सम्पूर्ण प्रान्त पर अधिकार कर लिया—नित्य सहस्रों जन काल के गाल में प्रविष्ट होने लगे। सर्वत्र हाहाकार मच गया।

तीर्थ को मातृभूमि की सेवा का अच्छा अवसर मिला। दीन-दुखियों को आहत होते हुए देख उसका हृदय मधुप-सा पिघल उठा। अपने सेवाश्रम के डाक्टरों और स्वयंसेवकों को लेकर तथा कुमारी ने नर्सों और स्वयंसेविकाओं के साथ समाज की सहायता के लिये प्रस्थान किया।

'कुमारी-तीर्थ-सेवाश्रम' ने बड़ी सहायता की। उस समूचे प्रान्त में केवल यही दीनों का सहायक था, रोगियों का आधार था, दुखियों का सच्चा मित्र था। उचित औषधि और उत्तम उपचार के

कारण लाखों प्राणी काल के गाल से बरबस खींच लिये गये। उस प्रान्त में कोई घर ऐसा नहीं था—जहाँ पहुँच कर तीर्थ और कुमारी ने सेवा न की हो।

तीर्थ देश का सच्चा सेवक था—उसने अपना तन, मन और धन तीनों देश की सेवा में लगा दिया। आधी रात का समय है—बादल आकाश में गरज रहे हैं—मार्ग अन्धकार के कारण नहीं दिखलाई पड़ता। साँप और बिच्छू मनमाना भ्रमण कर रहे हैं। सर्वत्र सन्नाटा है—फिर भी तीर्थ अकेला प्लेग के रोगियों को देखने के लिये पगडंडी की राह से दौड़ा चला जा रहा है। दोपहर है या संध्या, रात है अथवा सबेरा, इसकी कोई चिन्ता नहीं—अपने इष्ट पथ पर दृढ़ है। सेवा ही उसके जीवन का उद्देश्य है।

परन्तु कुमारी भी इससे कम न थी। वह भी नर्सों के साथ स्त्रियों की सेवा में लगी थी। उसके अविराम उद्योग से सहस्रों स्त्रियाँ इस भयंकर महामारी से बच गईं—

धीरे-धीरे महामारी का प्रकोप मिट गया। अबाल-वृद्ध प्रसन्न हो उठे—बच्चे-बच्चे के मुख पर तीर्थ और कुमारी का नाम छा रहा था। प्रत्येक घर उसके उपकारों से दब रहा था। आज सभी उन दोनों के लिये प्राण देने को तैयार थे—आज से कुछ ही दिन पहले जो लोग 'तीर्थराज भ्रष्ट है' यह कहकर पुकारते थे, आज स्वयं उसे अपने मुख से देवता कह रहे हैं। स्त्रियाँ कुमारी को देवी कह कर पुकार रही हैं। निःसन्देह तीर्थ की निःस्वार्थ सेवा ने सबों को दास बना लिया।

इसी बीच में तीर्थराज ने वायु की शुद्धि तथा जनता के कल्याण के लिये एक बहुत बड़ा यज्ञ किया—उस धार्मिक समारोह में दस दस बीस-बीस कोस के आदमी एकत्र हुये। रामयश और तीर्थ के प्रत्येक सम्बन्धी इस उत्सव पर पधारे थे। सभी स्वजातियों ने मिलकर

यह निश्चय किया कि इस पुनीत कार्य में सब भाई मिलकर तीर्थ को अपना लें।

आज एक विशाल सहभोज है—तीर्थ के सहस्रों स्वजातीय एकत्र हुये हैं। सभी इस बात के लिये प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं कि तीर्थ और कुमारी के हाथ का भोजन करेंगे। यथासमय यह कार्य्य सम्पादित हुआ—आज तीर्थराज अपने जाति-भाइयों में मिला लिया गया। सबों ने कुमारी के हाथ का बनाया खाने में अपना सौभाग्य समझा।

कुमारी के द्वारा स्त्री-समाज का बड़ा सुधार हुआ, उसने गाँव-गाँव में कन्या-पाठशालायें खुलवाईं—स्वयं घर-घर में जाकर बहू-बेटियों को उसने आचार-विचार की शिक्षा दी। चरित्र-बल तथा पति-भक्ति का ज्ञान कराया। कुमारी ने कुछ ही दिनों के परिश्रम से उस प्रान्त की नारी-समाज को शिक्षित बना दिया।

इधर पुरुष समाज में तीर्थ ने जागृति उत्पन्न कर दी, छोटे-छोटे बच्चे भी पाठशालाओं में जाने लगे, कृषकों की सुविधा के लिये गाँव-गाँव में रात्रि-पाठशालायें खुल गईं—सर्वत्र पुस्तकालयों का प्रबन्ध हो गया—अब वह पूर्व परिचित अज्ञानी प्रान्त नहीं रह गया—इस मातृभूमि के सच्चे सेवक ने उसे ज्ञानवान और धीवान बना दिया।